प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला।
दारागंज, प्रयाग।

मुद्रक
सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'
नागरी प्रेस, दारागंज,
प्रयाग।

समर्पण

हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ, कहानी-लेखक

मेरे शिष्य और मित्र

पं० गणेश जी पाण्डेय

के

कर कमलों में

यह पुस्तक प्रेम चिन्ह स्वरूप

सप्रेम समर्पित

केदारनाथ गुप्त

निवेदन

वेद भगवान का वाक्य है, "पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत," अर्थात् हे ईश्वर मैं सौ वर्ष तक देखूं और सौ वर्ष तक जीवित रहूँ। यह इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य की आयु कम से कम सौ वर्ष की होनी चाहिये।

किन्तु इस समय हमारे देशवासियों की औसत आयु केवल २५ वर्ष रह गई है जब कि दूसरे सभ्य देश के निवासियों की औसत आयु ५० वर्ष से भी अधिक है। छोटी अवस्था में विवाह का हो जाना और आध्यात्मिक शिक्षा न होने के कारण बालकों द्वारा ब्रह्मचर्य को नष्ट करना आयु क्षीण करने के ये दो कारण हैं ही, किन्तु इनके अतिरिक्त रहन-सहन और भोजन की अस्वाभाविकता का भी हमारे जीवन पर अत्यन्त बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

आधुनिक सभ्यता के कारण हम खुली हवा में नंगे बदन निकलना नापसन्द करते हैं। स्थान की संकीर्णता के कारण जिस घर में १० मनुष्यों को रहना चाहिये वहां २० मनुष्य रहते हैं। इसका असर शरीर पर बहुत भारी पड़ता है। भोजन को पचाने और साफ शौच लाने के लिये हममें से अधिक सज्जन व्यायाम नहीं करते। भोजन हमारा प्रकृति से इतना दूर हो गया है कि इस विषय में जो कुछ कहा जाय थोड़ा है।

ईश्वर ने मनुष्य को खाने के लिये वास्तव में फलों की रचना की थी और उनसे उतर कर सब प्रकार के अन्नों का। फल को भी हम बिना नमक और मिर्च मिलाये नहीं खाते। खेत में लगा हुआ हरा अन्न कितना बलदायक होता है। वह सूखने पर पीसा जाता है और उसकी हम लोग रोटी खाते हैं। यहाँ तक तो ठीक है। किन्तु हम केवल अपनी मूर्खता से उसको एक कदम खराबी की ओर और बढ़ा देते हैं।

आटे का चोकर निकालते हैं और मैदे की रोटी खाते हैं। चोकर वास्तव में आटे का हीर है। किन्तु ऐसे अमूल्य पदार्थ का मूल्य न समझकर हम उसे फेंक देते हैं। इसके अतिरिक्त इस मैदे से नाना प्रकार के पकवान और स्वादिष्ट भोजन बनाते हैं जो हमारे शरीर के लिये हानिकर हैं। इसी प्रकार तरकारियों की भी दुर्दशा की जाती है। तरकारियों को उबालकर खाना यहाँ तक ठीक है किन्तु उनके स्वाद को बढ़ाने के लिये नाना प्रकार के मसाले डालना शरीर के लिये अत्यन्त हानिकर है।

सभ्य समुदायों में फलाहार और अन्नाहार के अतिरिक्त मांस खाने की प्रथा बड़े वेग से बढ़ रही है। साथ ही साथ मदिरा, चाय, कहवा, भाँग और नाना प्रकार के दूसरे उत्तेजक पदार्थों का भी बड़े जोरों के साथ सेवन किया जा रहा है। ये सब वस्तुएँ शरीर को नष्ट करनेवाली हैं। वास्तव में मनुष्य में भोजन बिलकुल प्राकृतिक होना चाहिये।

हमारे पूर्वज खुली हवा में रहते थे और प्राकृतिक भोजन करते थे। इसलिये वे दीर्घजीवी और बलिष्ठ होते थे। हम अपने को सभ्य कहकर झूठे आडम्बर में भले ही डाले रहें किन्तु हमारी रहन-सहन और हमारा

भोजन इस समय तत्व दृष्टि से वास्तव में अप्राकृतिक है। इसका यह प्रभाव होता है कि हमारे शरीर में धीरे-धीरे विकार उत्पन्न होता है जिसको विजातीय द्रव्य कहते हैं। यह विजातीय-द्रव्य क्रमशः शरीर को मोटा, फफ्फस और बदसूरत बनाता है। शरीर की शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि वह बीमारी से मुठभेड़ नहीं कर सकता। और जरा सी बीमारी से बीमार हो जाता है और पञ्चतत्व को प्राप्त होता है।

इन सब बीमारियों को दूर करने की शरीर को स्वस्थ रखकर दीर्घ जीवी बनाने की केवल एक ही औषधि है और वह है जल-चिकित्सा। जल चिकित्सा शरीर के विजातीय-द्रव्य को हटाकर उसे स्वस्थ बनाती है और मनुष्य को दीर्घजीवी करती है। शोक है कि देश में सब प्रकार की औषधियों का प्रचार तो बड़े वेग से हो रहा है किन्तु वास्तविक औषधि जल-चिकित्सा की ओर लोगों का बहुत कम ध्यान है। यदि जल-चिकित्सा के अस्पताल जगह जगह खोल दिये जायें तो मनुष्य निसन्देह नीरोग रहे और उस पैसे को बचावे जो वह औषधियों में खर्च करता है।

वर्तमान पुस्तक इसी विषय पर लिखी गई है। इसमें जलचिकित्सा के सारे सिद्धान्तों का बड़ी सरल भाषा में प्रतिपादन किया गया है और मेरी समझ में और पुस्तकों की अपेक्षा इसका मूल्य भी कम है।

जर्मनी निवासी लुई कूने साहब जल-चिकित्सा के प्रवर्तक हैं। उन्होंने 'न्यू साइंस आफ हीलिङ्ग' नाम की पुस्तक लिखी है। वर्तमान पुस्तक उसी का निचोड़ है। बहुत सी टेक्निकल बातें ऐसी थीं जिनको

अक्षरशः लुई कूने के ही शब्दों में रखना आवश्यक समझा गया है। अतएव उन टेकनिकल अध्यायों का भावानुवाद किया गया है और दूसरे अध्यायों की छाया ली गई है। इसके अतिरिक्त कूने साहब के और भी जो ग्रन्थ हैं उनका भी सक्षेप मे सार दे दिया गया है। कुछ वर्षो का मेरा जो जल-चिकित्सा का अनुभव है उसे भी दिया है। इस प्रकार यह पुस्तक तैयार की गई है। इसमें मेरी कृति बहुत कम है। केवल कूने साहब की रची हुई सामग्री है।

मैं इस पुस्तक को लिखने का चिरकाल से विचार कर रहा था किन्तु कार्य की अधिकता के कारण नही कर सका। यदि इस पुस्तक का प्रचार नवयुवकों में विशेष रूप से हुआ, जिनके लिये यह वास्तव में लिखो गई है, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा। ईश्वर हमारे देशवासियों को दीर्घ-जीवी बनावे, यही हमारी कामना है।

अग्रवाल विद्यालय, प्रयाग
१४—५—३३ } —केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

स्वास्थ्य और जल-चिकित्सा

१—जल-चिकित्सा के प्रवर्तक लुई कूने साहब

लुई कूने साहब का जन्म जरमनी के लिपजिक नगर मे हुआ था। वे जन्म के रोगी थे। २० वर्ष की आयु से वे फेफड़ो और सर की पीड़ा से व्याकुल हुए। डाक्टरो का बहुतेरा इलाज किया; किन्तु उससे कोई लाभ न हुआ। उससे हारकर उन्होने जल-चिकित्सा की खोज किस प्रकार की, उसका विवरण वे इस प्रकार लिखते है:—

"सन् १८६४ ई० के लगभग मैंने समाचार पत्रो मे पढ़ा कि लिपजिग नगर मे प्रकृति-चिकित्सा के कुछ प्रेमियो ने एक सभा खोली है और वे हर प्रकार का इलाज विना औषधियो के करते हैं। इसके सञ्चालक मेलजर (Meltzer) साहब थे। मै साहस बाँधकर इस सभा मे शामिल हुआ और उपस्थित मण्डली के व्याख्यानों को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। इस दिन से मै सभा की हर बैठक मे पहुँचने लगा।"

"मेरे फेफड़े का दर्द क्रमशः बढ़ता गया। पेट में भी एक फोड़ा निकल आया। डरते-डरते मैंने एक सज्जन से पूछा कि भाई क्या मेरे रोग की भी दवा आप बता सकते हैं? उन्होंने कहा, हाँ, आप पानी की पट्टी फेफड़ों पर बाँधिये। मैने बाँधना शुरू किया और पेट के ऊपर भी पट्टी बाँधी और इस समय की

प्राकृतिक-चिकित्सा के अनुसार भीगी चादर लपेटी, पिचकारी लगाई; शरीर के अंगों को जल से तराबोर किया; किन्तु कुछ दर्द कम होने के अलावा और कोई विशेष लाभ न हुआ।"

"इसी बीच में मैं अपना दिमाग प्रकृति की ओर दौड़ाता रहा और कुछ नियम निर्धारित किये, कुछ यन्त्र बनाये और उनकी परीक्षा मैं अपने शरीर पर करने लगा। मुझे इसमे सफलता हुई। मेरी दशा सुधरने लगी और जिन लोगों ने मेरे कहने के अनुसार चिकित्सा की उनको भी लाभ हुआ। मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि मेरे सिद्धांत बिलकुल सत्य हैं।"

"मैंने जब उन सिद्धान्तों का जिक्र सर्वसाधारण में करना शुरू किया तो वे मेरी हँसी उड़ाने लगे। डाक्टरों ने तो कहना शुरू किया कि लुई कुने पागल हो गया है। वह सनक गया है। मैंने अपने यंत्र उनके सामने रक्खे और एक बार परीक्षा करने की प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने उन यन्त्रों को कमरे के एक कोने मे फेंक दिया, जहाँ थोड़े दिनों मे वे घुनकर खराब हो गये।"

"मैंने डाक्टरों की उपेक्षा की कुछ परवाह न की। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि मैंने सब रोगो का कारण और उनको अच्छा करने की तरकीब ढूँढ़ निकाली है। मुझे इससे बड़ा संतोष हुआ। अब मैंने अपनी चिकित्सा का प्रसार सर्वसाधारण मे करने का विचार किया। मैंने सोचा कि यदि कुछ रोगियों को मैं अच्छा कर सका तो जनता मेरी चिकित्सा पर आपसे आप विश्वास करने लगेगी। मेरे घर में रोजगार होता था। मैंने सोचा यदि उसे छोड़कर मैं जल-चिकित्सा में अपना जीवन अर्पण करता हूँ तो इतने वर्षों का मेरा रोजगार नष्ट होता है। मेरे हृदय में उथल-पुथल होने लगी। अन्त में अन्तरात्मा की विजय हुई। मैंने अपना सब काम बन्द करके १० अक्टूबर सन १८८३ ई० को अपना एक जल-चिकित्सा भवन खोला। धीरे-धीरे रोगी मेरे

पास इलाज के लिए आने लगे और मैंने उन्हें चंगा करना शुरू किया। सैकड़ों आशा-रहित रोगियों को मैंने अच्छा किया। वे ही अब मेरी चिकित्सा का गौरव चारों ओर बढ़ाने लगे।"

"मैंने अब जल-चिकित्सा में खोज करना शुरू किया। चेहरा देखकर मैं बीमारियों को पहचानने लगा। इसमें मुझे सौ फी सदी सफलता मिलने लगी। मैंने 'मेहन स्नान' (Sitz bath) की खोज की जिसने रोगों को हटाने में मेरी बड़ी सहायता की। अब तो मुझे अपने इलाज पर इतना विश्वास हो गया है कि मैं चुनौती देकर कह सकता हूँ कि हर रोग को दूर कर सकता हूँ, हाँ हर रोगी को नहीं अच्छा कर सकता। जिन रोगियों ने दवा खा-खाकर अपना सारा शरीर बिगाड़ रक्खा है, जिनके शरीर में कुछ दम ही नहीं रह गया, उनको मैं अलबत्ता रोगमुक्त नहीं कर सकता, हाँ उनके रोग को कम जरूर कर सकता हूँ।"

"पच्चीस वर्ष अथक परिश्रम करके मैंने अपने को अब बिल्कुल चंगा कर लिया है और दूसरे रोगियों को चंगा करने का दम भरता हूँ।

२—जल और उनका गुण

जल एक अपूर्व पदार्थ है जिसे ईश्वर ने पैदा किया है। जल की महिमा के बारे में ऋग्वेद में इस प्रकार लिखा है:—

आप इद्वा भेषजो रापो अपीव चातनीः।
आपस् सर्वस्य भेषजोस्तास्तु कृण्वातु भेषजन्।

अर्थात् जल औषधि है। जल रोगों का नाश करता है। यह सब रोगों को दूर करता है। इसलिए यह तुम्हारा रोग दूर करे।

"अप्स्वन्तरमृतं अप्सु-भेषजम्। अपामुत प्रशस्तये"

अर्थात् जल में अमर बना देने की शक्ति है। जल में रोग छुड़ा देने का गुण है। इस जल की वास्तव में ऐसी ही महिमा है।

जल नहाने के काम मे आता है। स्नान जीवन-धारणा के लिये महान उपकारी है, शरीर भर के रन्ध्रो में जब गंदगी भर जाती है तो उसे हम जल से मल-मलकर साफ करते हैं। स्नान की इसी वास्ते आवश्यकता पड़ती है कि शरीर रोज स्वच्छ रहे।

स्नान करने में अकथनीय आनन्द आता है। ज्योंही आप स्नान करते हैं त्योंही शरीर भर में एक प्रकार की बिजली ऐसी दौड़ जाती है। शरीर ठण्डा हो जाता है और दिमाग ताजा हो जाता है। देह शुद्ध होने से बुद्धि भी पवित्र हो जाती है।

जब आप अधिक भोजन कर लें, जब आपको कच्ची डकारें आती हों तब एक या दो ग्लास ठण्डा पानी आप पी लीजिये, आपकी बदहज्मी दूर हो जायगी और आपका चित्त प्रसन्न हो जायगा। मैंने उन लोगो मे इसकी परीक्षा की है जिनको बदहजमी रहती है और उन्हें लाभ हुआ है।

यह बात हमारे घरो में परम्परा से चली आई है कि प्रात. काल चारपाई से उठते ही डेढ़ पाव पानी पी लेना चाहिये। इसका नाम उपःपान रक्खा गया है। प्रातःकाल जल पीने के अनेक गुण है, इससे बदहज्मी दूर होती है, फेफड़े और दिल मजबूत होते है, शरीर से फुर्ती आती है, आँखो की रोशनी बढ़ती है, बुद्धि बढ़ती है और मनुष्य दीर्घायु होता है।

प्रातःकाल उठकर दो-चार कुल्ली करके दाँतो को ठंडे पानी से रगड़ना चाहिये। गला साफ करके मुंह और नथुनों को साफ कर लेना चाहिये। इसके पश्चात् धीरे-धीरे चूस-चूसकर पानी पीना चाहिये।

सवेरे का पिया हुआ पानी अँतड़ियों में जाकर मूत्राशय और अन्य मल निकालने वाले कोठों को उत्तेजित करता है जिससे वे अपना काम तेजी से करने लगते है। जो भोजन रात भर विश्राम लेने के पश्चात् भी नहीं पचा वह शीघ्र पच जाता है

और हानिकारक वस्तुयें पेशाव के द्वारा बाहर निकल जाती हैं। यह स्मरण रहे कि प्रातःकाल शौच से पहिले पानी पिया जाय।

उषःपान के पश्चात् शौच जाने से पाखाना बहुत साफ होता है। मलावरोध से प्रायः बवासीर का रोग हो जाता है। वह बवासीर उषःपान से अच्छी हो जाती है। जब पानी अँतड़ियों में जाता है तो वह उसकी दीवालों में लगे हुये खुश्क मल को ढीला करने लगता है और अँतड़ियाँ बिल्कुल साफ हो जाती है। संग्रहणी, उदरशूल आदि भयानक पेट की बीमारियाँ भी उषःपान से शीघ्र दूर होती हैं।

उषःपान से मूत्र-सम्बन्धी सारे रोग अच्छे होते हैं। कुछ लोग जब पेशाब करते हैं तो उनके, जननेंद्रिय में जलन होती है, कुछ-कुछ पेशाब के साथ सफेदी जाती है। कुछ लोगो के गुर्दे में पथरी पड़ जाती है जिससे उनको कभी कभी शूल भी उठता है। उषःपान से ये सारे विकार थोड़े समय मे दूर हो जाते है। कहाँ तक कहा जाय, उषःपान से गुण ही गुण हैं।

जिस प्रकार प्रातःकाल जल पीने के लिये कहा गया है, उसी प्रकार सोते समय भी जलपान करना चाहिये। जल पीकर सोने से निद्रा गहरी आती है। बुरे स्वप्न नहीं दिखलाई पड़ते और स्वप्न-दोष नही होता। हमारे देश का विद्यार्थी-दल आजकल स्वप्न-दोष से बेतरह पीड़ित हो रहा है। उन्हे उससे बचने के लिये प्रातः और सोते समय पानी पीकर परीक्षा करनी चाहिये।

जल और जल-चिकित्सा

हम लोग जो भोजन करते है वह सब हजम नही होता, कुछ न कुछ बिना हजम हुये पेट में पड़ा रहता है, अपच भोजन से थोड़ी स्टीम रोज ही बना करती है। स्टीम को नाश करने के लिये ठंडा पानी सब से बड़ा शस्त्र है। भाप जब किसी ठंडी सतह को छूती है तो वह फिर पानी बन जाती है। हमारे

शरीर में भी जो विकृत-पदार्थों के रहने से स्टीम बनती है वह ठंढे पानी से स्नान करते ही पानी होकर नीचे पेड़ू में चली जाती है और वहाँ से वह पाखाने और पेशाब के रास्ते बाहर चली जाती है, और शरीर एक दम ठंढा हो जाता है।

जिस दिन हम स्नान नहीं करते उस दिन ज्वरांश-सा मालूम होता है। न तो अच्छी तरह नींद आती है और न भली-भाँति किसी काम में चित्त लगता है। मन भी मलीन रहता है। यदि हम कुछ रोज तक लगातार स्नान न करें तो शरीर के अन्दर अधिक तादाद में स्टीम जमा हो जाती है और हमें ज्वर आ जाता है। इतना ही नहीं यह स्टीम सारे शरीर में फैलकर हमारे शरीर भर के कल पुरजों को बिगाड़ देता है। जल-चिकित्सा में यह सब विकार बिना स्नानों के दूर कभी नहीं हो सकते। स्नान के भेद किसी दूसरे प्रकरण में विस्तार पूर्वक लिखे जायँगे, यहाँ तो इतना ही उल्लेख करना काफी है कि लगातार उदर स्नान मेहन-स्नान आदि स्नानों के लेते रहने से ये सब विकार दूर हो जाते हैं और शरीर फिर स्वस्थ हो जाता है। शुरू शुरू में यदि मनुष्य वैज्ञानिक ढङ्ग से आहार विहार के साथ नहान की चिंता करे तो ऐसे कठिन समय का उसे सामना ही न करना पड़े।

मेरी माँ की अवस्था इस समय ६५ वर्ष की है। वे साधारणतया स्वस्थ हैं। जब उन्हें ज्वर आता है तो वे चिकित्सा नहीं करतीं, भोजन छोड़ देती हैं और ठंढे जल से सारे शरीर का स्नान करती हैं। परिणाम इसका यह होता है कि वे तीन या चार रोज में अच्छी हो जाती हैं। पहिले तो मेरी समझ में नहीं आता था कि वे किस प्रकार अच्छी हो जाती हैं किन्तु जब मुझे जल-चिकित्सा से प्रेम हुआ, तब मैंने समझा कि स्नान से उनका नीरोग हो जाना अत्यन्त वैज्ञानिक है।

उड़ीसा और पूर्वीय बंगाल में ज्वर आने पर ठंढे पानी से

स्नान करने और ठंडे चावल का भात खाने की प्रथा है। इससे उनका बुखार अच्छा हो जाता है।

मेरी बच्ची आग से जल गई थी। मैंने उसपर ठंडे पानी से गीली करके मिट्टी बाँधी। वह चार रोज में अच्छी हो गई।

जल चिकित्सा के जल का बड़ा महत्त्व है। लुई कूने ने ठंडे जल से ही स्नान करा-कराकर हजारों रोगियों को स्वस्थ किया है। उन्होंने जिन रोगियों को अच्छा किया है उनकी एक लंबी सूची भी दी है। वास्तव में कूने साहब के निकाले हुये स्नान ऐसे ही हैं। खर्च कुछ नहीं है, लाभ बहुत है। हमें इनसे लाभ उठाना चाहिये और जल के महत्त्व को समझना चाहिये।

३-मिट्टी और उसके गुण

मिट्टी एक विचित्र पदार्थ है, जिसके गुण वर्णन करना कठिन है। संसार के जितने खाने के पदार्थ हैं वे सब मिट्टी से उत्पन्न होते है। गेहूं, चना, ज्वार, बाजरा, अरहर आदि जितने अन्न है, वे सब मिट्टी से उत्पन्न होते हैं। सेब, नासपाती, अंगूर, केला, संतरा आदि जितने फल है, सब मिट्टी से उत्पन्न होते हैं! गुलाब, गेंदा, चमेली, बेला आदि जितने फूल है वे सब मिट्टी से उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार की मिट्टी होगी, उसी प्रकार के अन्न, फल और फूल उत्पन्न होंगे।

डाक्टर लोग प्राय. मिक्सचर (Mixture) बनाकर रोगी को बड़े अभिमान के साथ देते हैं, किन्तु मिट्टी में न मालूम कितने पदार्थों का सम्मिश्रण है। इसमें ऐसे-ऐसे पदार्थ मिले हैं जिनका पता लोगो को अभी तक नहीं चला। ऐसा उत्तम दर्जे का (Mixture) भला किसको लाभ न करेगा।

मिट्टी वास्तव में हमारा बिछौना है, मिट्टी हमारे रहने का स्थान है, और मिट्टी हमारे रोज के स्तेमाल की चीज है। घर

के बर्तन मिट्टी से कितने साफ होते हैं। क्या कोई ऐसी दूसरी चीज है जिससे बर्तन इतने साफ होते हों, जितने मिट्टी से साफ होते हैं। हमारे चूल्हे, हमारी दलाने, घर की दीवारें सब मिट्टी से पोती जाती हैं और वे कितनी स्वच्छ रहती हैं। घर में जहाँ कहीं कूड़ा पड़ा हो, घर मे जहाँ कहीं बदबू आती हो, आप पोतनी मिट्टी से वहाँ पोत दीजिये, सब बदबू दूर हो जायगी और वहाँ खुशबू आने लगेगी। देखिये कीटाणुओं को भी मारने की कितनी शक्ति मिट्टी में है।

आजकल साबुन का प्रचार अधिक हो रहा है। उससे लोग देह साफ करते हैं और सर साफ करते हैं। मिट्टी साबुन का काम करती है। उससे शरीर खूब साफ होता है। साबुन से मिट्टी में विशेषता है। साबुन मे चर्बी एलकोलिन आदि दूषित पदार्थ मिले रहते है जो मिट्टी में नही पाये जाते।

मिट्टी हमारे शरीर की दुर्गन्धि को दूर करती है। मनुष्य जब पाखाना फिर आता है तो वह हाथ और पैर मिट्टी से धोता है। आबदस्त लेने से जो दुर्गन्धि हाथ में लग जाती है वह मिट्टी से एकदम जाती रहती है। इधर कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे महाशय ने मिट्टी की जगह साबुन का इस्तेमाल करना शुरू किया है। यह उनका भ्रम है। जो काम मिट्टी से विना मूल्य हो सकता है उस काम को पैसे का खर्च करके साबुन की क्या आवश्यकता है।

मिट्टी से लोग दाँत साफ करते है। इससे दाँतों का मैल तो निकल ही जाती है, साथ ही उनकी जड़ भी मजबूत होती है, इससे मुंह की बदबू निकल जाती है। कोई भी मंजन दाँतों को इतना साफ और सुदृढ़ नहीं बना सकता, जितना मिट्टी।

मिट्टी के बर्तन बनाये जाते है, जैसे हाँड़ी, घड़े, मटके आदि। घड़े और मटकों में गरमी के मौसम मे लोग ठंडा करने के लिए पानी भरते है। उनका पानी कितना शीतल और

सुगन्धित होता है। हड़िया में लोग भोजन पकाते हैं। दाल, भात, तरकारी जितनी मिट्टी के बर्तनों की बनी अच्छी होती है उतनी शायद किसी धातु के बर्तनों की अच्छी नहीं होती। इसके अलावा धातु के बर्तनों से ऐसे पदार्थ भी भोजन में मिल सकते हैं जो शरीर के लिए हानिकारक हों, किन्तु मिट्टी के वर्तनों मे पकाने से यह डर नहीं रहता।

मिट्टी से कपड़े साफ होते हैं। सज्जी मिट्टी एक प्रकार की मिट्टी है, जिसे धोबी लोग कपड़ों के धोने मे प्राय: इस्तेमाल करते हैं और उससे कपड़े साफ भी काफी होते है।

मिट्टी मे गला देने वाली और शोपक शक्ति मौजूद होती है। यदि किसी को फोड़ा हो गया हो तो उसके ऊपर मिट्टी की पुल्टिस लगाने से वह फोड़ा पक जायगा और उससे मवाद बाहर निकल जायगा। कभी कभी ऐसा होता है कि फोड़ा फुटता नहीं, बैठ जाता है। इस प्रकार मिट्टी की पुल्टिस फोड़े को बैठा देती है।

जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर एडाल्फ जुस्ट (Abolph Juts) ने अपनी Return to Nature नामक पुस्तक में निम्नलिखित रोगो को मिट्टी से अच्छा होता हुआ बतलाया है।

सब प्रकार के चोट से होने वाले घाव और उनसे उत्पन्न होने वाले सब प्रकार के बुखार और चर्म रोग, कटने का घाव छुरी का घाव ,गोली का घाव, आग से जलने का घाव, जीव जन्तु द्वारा काटे हुए घाव, कैन्सर, कुष्टरोग आदि सब मिट्टी से अच्छे किये हैं।

जल-चिकित्सा में मिट्टी का अधिक महत्व है। उसकी ठंढी पट्टी प्राय: पेड़ू में दी जाती है जिससे अनेक रोग दूर होते हैं।

पेड़ू में पट्टी देने से गठिया, बात रोग, मूत्राशय और

जिगर की बीमारियाँ, गले की बीमारियाँ, फेफड़े की बीमारिया और हर प्रकार के बुखार दूर होते हैं।

पेड़ में मिट्टी की गीली पट्टी बाँधने से सर का दर्द, हैजा बदहजमी दूर होती। छाती और पेड़ू पर मिट्टी बाँधने से क्षय रोग निश्चय दूर होता है। साथ साथ दूसरे स्नान भी लेते रहने चाहिये।

यदि किसी स्त्री को बच्चा न होता हो तो आध इञ्च मोटी मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर बाँधने से उसके लड़का बिना किसी तकलीफ के हो जायगा। यदि एक पट्टी में न हो तो दूसरे में तो अवश्य ही होगा।

जुस्त और लुई कुह्नी साहब निम्नलिखित स्थानो पर मिट्टी बाँधने की सिफारिश करते हैं:—

पेड़ू पर, छाती पर, फेफड़ों पर, आँख के किनारे किनारे, गाल के ऊपर, गले मे, तलवे में, हाथ में, जननेन्द्रिय पर मूत्राशय पर, जिगर पर और रीढ़ पर।

कहने का तात्पर्य यह कि मिट्टी मे फायदे ही फायदे हैं, विश्वास करके इसकी परीक्षा करनी चाहिये। जल-चिकित्सा से प्रेम रखने वाले सज्जनों को अच्छी मिट्टी दो चार झव्वे अपने पास रखना चाहिये।

पानी की गद्दी किस प्रकार रखनी चाहिए:—

जहाँ गद्दी रखनी हो उस स्थान के अनुसार कपड़ा ले लीजिये और उसे भिगोकर उसके चार-पाँच परत कर लीलिये। फिर उसे जहाँ रखना हो रख दीजिये, ऊपर से थोड़ा-सा ऊनी कपड़ा रखकर किसी फीते से बाँध दीजिये।

मिट्टी की पट्टी किस प्रकार रखनी चाहिये:—

(१) अच्छी मिट्टी खूब ठण्डे पानी में भिगो दीजिये!

उसे सानकर गाढ़ा कर लीजिये, पतली न होने पावे। फिर आध इञ्च मोटी तह करके उसे जहाँ रखना हो, रख दीजिये और ऊपर कपड़ा रखकर बाँध दीजिये।

(२) दूसरी तरकीब—एक कपड़े में उपरोक्त ढङ्ग से आध इञ्च मोटी मिट्टी रखिये और उसे जिस अङ्ग पर रखना हो रख दीजिये। इसके पश्चात् ऊपर एक सूती कपड़ा रखिये और उसके ऊपर एक ऊनी कपड़ा रखकर बाँध दीजिये।

४—पाँच तत्वों से बना हुआ शरीर कैसे काम करता है

यह शरीर पाँच तत्वों से मिलकर बना है। ये पाँचों तत्व मिट्टी, पानी, गरमी, आकाश और वायु हैं। यह शरीर ही क्या सारा संसार इन्हीं पाँचो तत्वो से रचा हुआ है।

हम यहाँ यह बतलाना चाहते हैं कि यह शरीर किस प्रकार काम करता है। डाक्टरों ने इसकी उपमा एक स्टीम इञ्जिन से दी है। जिस प्रकार इञ्जन को चलाने के लिये कोयला, पानी, अग्नि और हवा की आवश्यकता है उसी प्रकार इस शरीर को चलाने के लिये हिसाब के साथ भोजन, जल, गरमी और हवा की आवश्यकता है। जिस प्रकार मछली पानी मे इधर-उधर उछलती रहती है, उसी प्रकार मनुष्य हवा मे इधर-उधर घूमता है। हिसाब से इञ्जन को यदि कोयला, पानी, आग, हवा मिलती जाय तो वह अच्छी तरह चलता है, इनमे से यदि किसी तत्व की अधिकता हो जाय तो इञ्जन बिगड़ जाता है। उसकी चाल में फर्क पड़ जाता है। इसी प्रकार अग्नि, जल हवा गरमी इन तत्वों में किसी तत्व की कमी हुई अथवा किसी की अधिकता हो गई तो फिर यह मशीन-रूपी शरीर काम नहीं कर सकता।

स्टीम इञ्जिन के लिये पत्थर का अच्छा से अच्छा कोयला

मँगवाया जाता है। उसमें साफ से साफ पानी देने का प्रबन्ध होता है। तब कहीं स्टीम इञ्जिन अपना काम सुचारु रूप से करता है। उसी प्रकार अच्छा से अच्छा, शीघ्र पचनेवाला भोजन जब इस शरीर में पहुँचाया जाय और साफ से साफ जब पानी दिया जाय तब कहीं यह शरीर स्वस्थ रह सकता है।

जिस प्रकार भोजन पहुँचाने का ख्याल हमें रहता है उसी प्रकार पचने के बाद बचे हुए मल का निकालना भी हमारे लिए आवश्यक है। जिस प्रकार इञ्जिन चलाने के लिए कोयले की राख को निकालकर फेंक देने की जरूरत होती है नही तो नया कोयला डाला नहीं जा सकता, उसी प्रकार शरीर के मल का निकालना भी जरूरी है।

यह क्रिया बराबर चलती रहती है। जो शरीर को भोजन, पानी देना जानते हैं और जिन्हें शरीर से मल निकालना भी मालूम है। वे कभी भी बीमार नहीं पड़ सकते। वे दीर्घजीवी होते हैं।

५—रोग किस प्रकार उत्पन्न होता है

ईश्वर ने इस मशीन रूपी देह को अत्यन्त पूर्ण बनाया है। इसका काम यदि सुचारु रूप से चलता जाय तो यह जल्दी बिगड़ नहीं सकती। इसके साथ जब हम ज्यादती करने लगते हैं, आहार और विहार में जब खराबी पैदा होती है तो यह मशीन भी बिगड़ने लगती है। मिथ्या आहार और विहार से शरीर के भीतर एक प्रकार का मल संचित हो जाता है, जो शरीर के काम में रुकावट डालता है, जिससे रोग उत्पन्न होता है। इस रुकावट डालने वाले मल का नाम "विजातीय द्रव्य है।"

कहने का तात्पर्य्य यह है कि शरीर में विजातीय-द्रव्य के उपस्थित रहने ही का नाम रोग है। दो दरवाजे ऐसे हैं जिनके

द्वारा विजातीय-द्रव्य शरीर के अन्दर पहुँचता है। नाक के द्वारा फेफड़ों में और मुँह के द्वारा मेदे में। इन दोनों दरवाजों में संतरी पहरा देने के लिये खड़े होते हैं। ये दोनों संतरी नाक और जिह्वा है।

हमारे ये दोनों संतरी अब किसी काम के नहीं रह गये। नाक बिना रोक-टोक हर प्रकार की वायु फेफड़ों में जाने की आज्ञा दे देती है। जिह्वा हर प्रकार का भोजन मेदे में पहुँचा देती है। एक मनुष्य तम्बाकू के धुयें को सुड़कता चला जाता है और उसे कुछ भी परेशानी नहीं होती। जिह्वा कड़ुआ, खट्टा सब प्रकार का भोजन पेट में घुसेड़ती चली जाती है। लोगों ने ५६ प्रकार के भोजन निकाल डाले हैं जिनका कुछ शताब्दियों पहिले पता भी नहीं था। आजकल के नवजवानों का बिना इतने प्रकार के भोजन किये पेट नहीं भरता। खराबी की हद हो गई है। ईश्वर ही इस खराबी से बचावे।

आजकल गरिष्ठ और अधिक भोजन करने की प्रथा भी बढ़ गई है। इससे मेदा कमजोर हो जाता है। एक उदाहरण से इसकी सत्यता अच्छी तरह समझी जा सकती है। मान लीजिये एक बैल १० मन का बोझ खींच सकता है। उसको चाबुक से मारने पर वह १५ मन का बोझा खींच सकता है। यदि इसी प्रकार उससे चाबुक ही से रोज काम लिया जाय तो एक दिन ऐसा समय आवेगा जब वह साधारणतया १० मन का बोझ भी न खींच सकेगा। इसी प्रकार यदि मेदे या अन्य कोठों से अधिक काम लिया गया तो कुछ समय के पश्चात् वे निकम्मे हो जाते है और अपना साधारण काम भी नहीं कर सकते।

स्वस्थ-मनुष्य के लिये भोजन की एक तादाद है जिसे वह पचा सकता है। इस तादाद के बाहर जो वस्तु होती है, वह मेदे के लिये विष है। यदि वह निकल न गई तो वही शरीर के

भीतर विजातीय-द्रव्य उत्पन्न करती है। इसलिए खाने और पीने में नियमित होना स्वास्थ्य की कुञ्जी है।

अब यह एक विचारणीय बात है कि जो विजातीय-द्रव्य शरीर के भीतर उत्पन्न हो जाता है उसका क्या होता है ? वह वास्तव में शरीर के कुछ अवयवों द्वारा निकालकर बाहर फेंक दिया जाता है। फेफड़ों से-मल बाहर जाने वाली श्वास द्वारा निकल जाता है। कुछ मल अँतड़ियों के द्वारा पाखाने के रूप में बाहर हो जाता है, कुछ खून में मिलकर पसीने के द्वारा बाहर जाता है। और कुछ पेशाब के रास्ते निकल जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीर हमेशा इस बात की कोशिश करता है कि हमारे पापों का बुरा प्रभाव न पड़ने पावे, यदि हम शरीर को विजातीय-द्रव्य से लबालब भर दें तो शरीर विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालने का काम पूर्णतया नहीं कर सकेगा। परिणाम इसका यह होगा कि वह विजातीय-द्रव्य को अपने भीतर ही स्थान देने लगेगा। इस विजातीय-द्रव्य में कोई पोषक पदार्थ नहीं होता, अतएव शरीर के लिए यह हानिकारक है, वह खून के दौरान में बाधा डालता है और हाज़मे को बिगाड़ देता है। विजातीय-द्रव्य धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न स्थानों में विशेषतया मल निकालने वाली इन्द्रियों के समीप जम जाता है। एक बार जब विजातीय द्रव्य जमने लगता है तो वह बराबर जमता जाता है। हाँ उस समय उसका जमना रुक सकता है जब आहार और विहार बदल दिया जाता है।

अब शरीर की सूरत शक्ल में अन्तर पड़ने लगता है और पहिले उन्हीं लोगों को मालूम होता है जो इस विषय के ज्ञाता हैं। दर्द भले ही न मालूम हो किन्तु शरीर उसी समय से रोगी होना शुरू हो जाता है, जबसे विजातीय-द्रव्य इकट्ठा होने लगता है। रोग इस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ता है कि पुरुष या स्त्री

को मालूम तक नहीं होता। बहुत समय के पश्चात् उसे जान पड़ता है कि मेरा शरीर बिगड़ रहा है। उसकी भूख बन्द हो जाती है, वह दौड़ धूप का काम नहीं कर सकता और दिमागी काम देर तक नहीं कर सकता। उसकी दशा उस समय तक सुधर सकती है जब तक गुर्दे, फेफड़े और चमड़ा अपने-अपने काम करते रहते हैं किन्तु, जब इनके काम निर्विघ्न नहीं होने पाते तो वह भारीपन मालूम करने लगता है और उसका शरीर उसे बोझ सा प्रतीत होने लगता है।

विजातीय-द्रव्य धीरे-धीरे शरीर भर में फैलने लगता है और शरीर के ऊपरी भाग में वह विशेषकर अपना घर बनाता है। गर्दन के भाग में यह स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। जब गर्दन मोड़ी जाती है तो तनाव मालूम होता है। उससे यह भी पता चल जाता है कि विजातीय-द्रव्य किस मार्ग से ऊपर तक पहुँचा है।

यह तो हुई इस शरीर की वर्तमान दशा की बात। बहुतसे लड़के माता के गर्भ से विजातीय-द्रव्य लेकर उत्पन्न होते हैं। यही कारण है कि बहुत से लड़के बाल्यावस्था में नाना प्रकार की बीमारियों से पीड़ित रहते हैं। विजातीय-द्रव्य पहिले पेड़ू मे जमा होता है और वहाँ से शरीर भर मे फैलता है। विजातीय-द्रव्य के मौजूद रहने से शरी के भिन्न-भिन्न कोठों को फैलाने का अवसर नहीं मिलता। अतएव उनकी स्वाभाविक वृद्धि मारी जाती है।

चोर की तरह विजातीय-द्रव्य अधिक समय तक छिपा पड़ा रहता है और अनुकूल मौका पाकर एकदम उभड़ पड़ता है। जिन पदार्थों से विजातीय-द्रव्य बना है वे घुल सकते हैं और उनके परमाणु अलग किये जा सकते हैं।

शरीर के भीतर जोश उभड़ता रहता है जो वास्तव में बड़े

महत्व का है। जोश विजातीय-द्रव्य की एक विचित्र सूरत कर देता है। उसके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं। उसका वजन भी बढ़ जाता है। तापमान बढ़ने का कारण यह है कि जोश से विजातीय-द्रव्य के टुकड़ों में रगड़ पैदा होती है। और रगड़ से गरमी उत्पन्न होती है।

अनुकूल अवस्था में जोश से विजातीय-द्रव्य जहाँ से चला है वहीं वापस किया जा सकता है और वहाँ से बाहर निकाला जा सकता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो सकती है। बर्फ पिघल कर पानी हो जाता है। पानी हवा और गरमी से भाफ बनता है। वही भाफ फिर जमकर बादल हो जाता है। बादल बरस कर नदियों के पानी मे आ मिलते हैं, नदी का पानी फिर जम कर वर्फ बन जाता है। यह सब बातें गरमी और सर्दी के घटने और बढ़ने से हुई हैं। घटती हुई गरमी के कारण पानी मे परिवर्तन हुये और घटती हुई सर्दी के कारण उसमें एक दूसरा परिवर्तन दिखलाई पड़ा। इसी प्रकार गरमी और सरदी के कारण शरीर के भीतर विजातीय-द्रव्य में परि-वर्तन होते हैं और वे उसके बाहर निकाले जा सकते हैं।

जोश पहिले पेड़ू में शुरू होता है और विजातीय-द्रव्य पेचिश के रूप में बाहर निकल जाता है! किन्तु यदि अँतड़ियों में सूखा मल है और नीचे का भाग कब्ज के कारण रुका हुआ है तो जोश खाया हुआ विजातीय द्रव्य ऊपर चलता है और हमारे सर में तत्काल पीड़ा पैदा होती है उस जोश मे गरमी होती है, अतएव उसका प्रभाव हम उसी समय मालूम करते है। खून का तापमान बढ़ जाता है और इसी दशा को हम ज्वर भी कहते है।

इस प्रकार हम देखते है कि जब विजातीय द्रव्य पेड़ू मे मौजूद रहता है और वह नीचे जाने का रास्ता न पाकर ऊपर

उठता है तो हमें ज्वर आता है। इसको अधिक स्पष्ट इस प्रकार कर सकते हैं कि ज्वर उसी समय आता है (१) जब पाखाना ठीक नहीं होता (२) जब पेशाब काफी तादाद में नहीं होता (३) जब शरीर के रोमरन्ध्र मैल से बन्द हो जाते हैं और (४) जब श्वास ठीक तौर पर नहीं ली जा सकती।

पर हम देखते हैं कि शरीर के भीतर जितने रोग उत्पन्न होते हैं वे सब विजातीय-द्रव्य के कारण होते हैं। यदि विजातीय-द्रव्य अनेक प्रकार के स्नानों से, जिनको लुई कूने ने निकाला है और जिनका वर्णन आगे अध्याय में किया जायगा, और नियमित आहार विहार द्वारा शरीर से भीतर से निकाल दिया जाय तो शरीर स्वस्थ हो सकता है। विजातीय-द्रव्य के संचय का ही नाम रोग है और उसको निर्मूल कर देने का नाम चंगा होना है।

६—मैं निरोग हूँ या रोगी

आजकल नीरोग मनुष्य के बारे में बहुत भारी भ्रम फैल रहा है। जो मनुष्य देखने में खूब मोटा ताजा होता है, जिसकी गरदन मोटी होती है, जिसकी तोंद निकली रहती है, लोग उसी को स्वस्थ समझते हैं, ऐसे आदमी से यदि कहिये कि जनाब आप बड़े तन्दुरुस्त हैं तो वह फूला नहीं समाता, मारे खुशी के उछल पड़ता है।

इसी गलत विचार से लोग शरीर को मोटा करने के लिये तह पर तह चढ़ाते जाते हैं। हलुआ, पूड़ी, मिठाई, रबड़ी, मलाई का खूब सेवन करते हैं। किस वास्ते ? इस वास्ते कि हम मोटे हों और तन्दुरुस्त बनें।

क्या आपने कभी पहलवानों का साथ किया है। यदि किया है तो स्वयं जानते होंगे; नहीं तो उनमें से अधिक की दिनचर्या मुझसे सुनिये। दिन-रात उन्हें शरीर को मोटे करने की चिन्ता

रहती है। सेरों बादाम, सेरों घी छानते है और हजार-हजार दो दो हजार दण्ड-बैठक पचाने के लिये लगाते है। वे मोटे अवश्य होते हैं और देखने मे भी उनका शरीर स्वस्थ दिखाई पड़ता है किन्तु वास्तव में जो बात है वह वे ही पहलवान जानते हैं।

प्रयाग ही के एक बड़े मोटे पहलवान थे। २० वर्ष की बात होगी, मुझे भी कुश्ती का शौक हुआ। मै सायंकाल उनके साथ कुश्ती लड़ने के लिये जाया करता था। एक सप्ताह के बाद पहलवान महोदय ने कहा, मास्टर साहब मुझे बवासीर का रोग है, करीब आध सेर या तीन पाव खून रोज पाखाने के साथ जाता है, नहीं तो हम लोग और न मालूम कितने तन्दुरुस्त हो जायें। मैं २०० बादाम रोज खाता हूँ और एक हजार दण्ड और एक हजार बैठक लगाता हूँ, नहीं तो मेरा शरीर इस समय तक न मालूम कहाँ होता।

पहलवान जी की यह दशा सुनकर मैं अवाक् रह गया। मुझे आश्चर्य होने लगा कि ऐसा हट्टा-कट्टा आदमी बवासीर से किस प्रकार पीड़ित हो सकता है। मैंने खोज करनी शुरू की। कई पहलवानों का साथ किया उनके भीतर घुसा और अंत में मुझे ऐसा कोई पहलवान न मिला जिनमें से अधिकांश को बवासीर का मर्ज न मिला हो।

हुई का अनुभव करता है। दूसरे कैसे हैं, इसका वह ख्याल भी नहीं कर सकता। एक जल-चिकित्सक जब पहलवानों के शरीर की ओर देखता है और उनके शरीर के अङ्ग और प्रत्यङ्ग में उसे विजातीय-द्रव्य ही दृष्टिगोचर रहता है। उनके खान-पान रहन-सहन को देखकर वह सहम उठता है। यदि वह उनसे बातें करता है और कुछ उपदेश देना चाहता है तो वह मूर्ख समझा जाता है और उसकी हँसी उड़ाई जाती है, किन्तु वह कहता है—अच्छी बात, चाहे न सुनो, हँसी उड़ा लो लेकिन समय जल्द आ रहा है जब हमारे विचारों का प्रचार होगा।

मोटेपन का यह भ्रम अभी तक फैल रहा है, पहलवानों की बात छोड़कर अब साधारण जनता पर आइये। वहाँ भी नीरोग की वही धारणा है जो धारणा पहलवानों मे फैली हुई है। मोटे-पन को लोग तन्दुरुस्त समझते है। बहुत से अभिभावक अपने बच्चों को अपने सामने आध-आध पाव घी दाल में डलवा कर पिलाते है। उसे दिन मे कई बार गरिष्ठ-गरिष्ठ भोजन कराते हैं। अधिक अमीर लोग तो दिन भर कुछ न कुछ खाते ही रहते है। वे समझते हैं कि ईश्वर ने जब हमें सम्पन्न किया है तो आखिर उसका उपयोग तो करना ही चाहिये और अपने आराम में ही उसे व्यय करने मे वे अपना महत्व समझते हैं।

ऐसे लोगों को स्वास्थ्य का सुख नहीं रहता। मलावरोध उनका गला पहिले पकड़ता है। बार-बार उनको वैद्यों से चूरन की गोली माँगने की जरूरत पड़ती है, बार-बार उनको एनीमा लेना पड़ता है और बार-बार पेट को साफ करने के लिए उन्हें कुछ न कुछ चिकित्सा करनी पड़ती है। प्रकृति अपना बदला लिये बिना नहीं छोड़ती। जिस कदर उन्होंने खाने-पीने में असंयम किया है, उसी कदर जब खाने-पीने में संयम करते हैं, तब कहीं वे स्वस्थ हो पाते हैं।

अब यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि वास्तव में स्वस्थ पुरुष कौन है ? इसका उत्तर जितना कठिन है उतना ही सरल भी है। स्वस्थ पुरुष वह पुरुष है जिसकी सब इन्द्रियाँ अपना अपना काम करती हों। नाक अपना काम करती हो. आँखों में चश्मा लगाने की जरूरत न हो, दिमाग अपना काम करता हो, खून साफ हो, पाखाना साफ होता हो, शरीर फुर्तीला मालूम होता हो, शरीर में हमेशा तेजी हो, सुस्ती कभी न मालूम होती हो, काम क्रोध से दूर रहे; जब इस प्रकार का मनुष्य हो तो उसे स्वस्थ पुरुष कहते हैं।

आदमी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब दुरुस्त हों। लेकिन यदि चश्मा लगाना पड़ता है तो उसे हम स्वस्थ नहीं कह सकते। उसकी आँखें दुरुस्त हों, उसका दिमाग दुरुस्त हो लेकिन यदि वह बहरा हो तो तन्दुरुस्त आदमी में नहीं गिना जा सकता; उसी प्रकार यदि बाहरी सब इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करती हों लेकिन यदि उसे बदहजमी हो तो वह भी कदापि तन्दुरुस्त नहीं कहा जा सकता। तन्दुरुस्त मनुष्य में वे सब अवस्थायें होनी चाहिये जो ऊपर कही जा चुकी हैं।

लुईकूने साहब ने एक और पहिचान तन्दुरुस्त होने की बतलाई है और वह यह है कि उसका पाखाना बँधा हुआ हो और जब मनुष्य शौच कर चुके तो उसकी गुदा में पाखाना न लगे। पशुओं की ओर ध्यान देकर देखने से मालूम हो सकता है कि उनका पाखाना बँधा होता है और उसमें चिपचिपाहट नहीं होती, बकरी घास पात खाती है, वह लेंड़ी हगती है, जब वह लेंड़ी करती है तो उसकी गुदा में लेंड़ी का कुछ भी अंश नहीं लगता।

बन्दर को लीजिए जो मनुष्य प्राणी से बहुत कुछ मिलता जुलता है, उसका पाखाना बँधा रहता है और उसकी गुदा में

पाखाना नहीं लगता। गाय, भैंस, बैल इत्यादि भी इसी प्रकार से पाखाना करते हैं। इन पशुओं को आबदस्त लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

एक बात इसके साथ और भी ध्यान देने योग्य है और वह यह है कि मनुष्य के पाखाने में बदबू भी न होनी चाहिये। उपरोक्त बतलाये हुये पशुओं के पाखाने मे कभी बदबू देखने मे नहीं आती, इसी प्रकार मनुष्य के पाखाने का हाल होना चाहिये वास्तव में मनुष्य जो आबदस्त लेता है वह केवल गुदा को और भी अधिक साफ और ठंढा करने के लिए होना चाहिये।

मनुष्य यदि प्राकृतिक भोजन करे। उसका रहन-सहन यदि प्राकृतिक होवे तो ऐसा होना कुछ कठिन नहीं है, कोई भी कुछ दिन नियम से रह कर अनुभव कर सकता है। हमने तो इसका अनुभव खूब किया है और इस समय भी कर रहे हैं।

निरोग मनुष्य का एक लक्षण और है, वह है उसका सुन्दर रूप। जितने निरोग स्त्री या पुरुष होते हैं, उन्हें खूबसूरत होना चाहिये। जङ्गल के पशु-पक्षी कितने सुन्दर और मोहक होते हैं। जब मनुष्य के शरीर मे विजातीय-द्रव्य इकट्ठा हो जाता है तब वह कुरूप हो जाता है। आपने प्रायः देखा होगा किसी की गरदन मोटी हो जाती है, किसी के पैर फूल जाते हैं, किसी का पेट सामने निकल आता है, किसी का मुँह भभराया होता है। यह सब विजातीय-द्रव्य संचित होने के चिन्ह हैं, शरीर से जब विजातीय-द्रव्य निकल जाता है तो मनुष्य सुन्दर और निरोग हो जाता है।

वास्तव में देखा जाय तो मालूम होगा कि विजातीय-द्रव्य शुरू-शुरू में अपच से प्रारम्भ होता है। अपच अस्वाभाविक रहन-सहन से होता है। ज्यों-ज्यों लोग माँस-मदिरे का अधिक सेवन करते हैं, ज्यों-ज्यों खट्टे-मीठे पदार्थ खाते जाते हैं, ज्यों-

ज्यों चीजों को अस्वाभाविक ढङ्ग से पकाकर और उनका सत निकाल कर लोग भोजन करते हैं त्यों-त्यों उनके मेदे को अधिक जोर पड़ता जाता है, जिससे उनका मेदा धीरे-धीरे अपना काम कम करने लगता है।

मेदे के साथ अत्याचार हम बचपन से ही करना शुरू कर देते हैं। बहुत-सी अंग्रेजी पढ़ी-लिखी मातायें अपने बच्चे को दूध नहीं पिलातीं, जो उनका स्वाभाविक आहार है। नाना प्रकार के कृत्रिम आहार उन्हें दिये जाते हैं जो उनके मेदे के बिलकुल प्रतिकूल है।

अप्राकृतिक आहार को शरीर अपना शत्रु समझता है और वह आहार कभी दस्त, कभी कै, और कभी अन्य रूपों में बाहर निकलता है। वह बिना पचे हुए मेदे मे होता है और अँतड़ियों में पहुँचता है, वहाँ से वह बाहर निकल जाता है। उससे लाभ नहीं होता। यदि वह न निकला और रक्त में मिल गया तो फिर वह जमा होता है।

हमारा भोजन एक रोज अप्राकृतिक हो तो कोई बात नहीं है किन्तु उसी प्रकार का भोजन जब रोज ही होता रहता है तो अस्वाभाविक और अपक्व भोजन विजातीय-द्रव्य के रूप में खून में जरूर ही मिलता है। विजातीय-द्रव्य सब से पहिले पेड़ू में इकट्ठा होता है, उसमें फिर सड़न पैदा होती है और फिर ऊपर और नीचे चारों ओर फूलता है। शरीर को उत्तेजित करने वाली आकस्मिक घटनाओं का ठंढा, चोट, मनोविकार आदि का प्रभाव विजतीय-द्रव्य पर पड़ता है और वह अपने उत्पत्ति स्थान की ओर फिर वापस जाने लगता है। जोड़ो मे जब वह रुकता है तो उससे सूजन पैदा होती है। किन्तु इसके बाद वह फिर जमा होता जाता है।

शरीर के जिस अंग में एक बार विजातीय-द्रव्य एकत्र हो

जाता है तो वह अपना काम ठीक तौर से नहीं कर सकता। उस अंग के रक्त प्रवाह में भी रूकावट पडती है। धीरे-धीरे वह अंग ठंडा हो जाता है और उसमें फिर गर्मी लाना कठिन हो जाता है।

जिसमे विजातीय-द्रव्य जितना अधिक होगा वह उतना ही अधिक रोगो का शिकार होगा। विजातीय-द्रव्य का ज्ञान शुरू मे मनुष्य को नही होता। उसकी मात्रा जब प्रत्यक्ष रूप में बढ़ जाती है तब वह उसका प्रत्यक्ष अनुभव करता है। विजातीय-द्रव्य की शरीर मे अधिकता हो जाती है तो उसमे सड़न पैदा होती है और सड़न से गरमी होती है। जब अधिक सड़न से अधिक गर्मी बढ़ जाती है तो उसी का नाम ज्वर होता है। प्रकृति विजातीय-द्रव्य को पसीने के रूप से बाहर निकालने की कोशिश करती है। आपने लोगो को कहते सुना होगा कि रोगी को रजाई ओढ़ा दो जिससे उसे खूब पसीना आजावे क्योंकि पसीना निकलने से ज्वर दूर हो जायगा।

इस प्रकार विजातीय-द्रव्य पसीने के रूप में निकल जाता है तो ज्वर दूर हो जाता है, किन्तु कहीं अप्राकृतिक दवाओं के द्वारा वह बीच से रोक दिया जाय तो सड़ने वाला विजातीय-द्रव्य भीतर ही रह जाता है और निकट भविष्य में और भी भीषण बीमारी फैलने की आशङ्का होती है। दूसरी बार उसी रोगी को जब फिर ज्वर होता है तो उसकी भीषणता बढ़ जाती है और भीषणता की दृष्टि से ज्वर के काला ज्वर, लाल ज्वर, आदि न मालूम कितने नाम रक्खे गये है।

विजातीय-द्रव्य जब धीरे-धीरे बढ़ता जाता है तो उससे अनेक प्रकार की बीमारियाँ जैसे सिर दर्द, जुकाम, खाँसी दाँत से पीड़ा पैदा होती है। सर के बाल भी अल्प आयु मे पक जाते है। कान से कम सुनाई देने लगता है और आँखो से कम दिखाई पड़ता है, पाचन-शक्ति का अभाव होता जाता है।

भोजन बिना पचे दस्त के रूप में बाहर निकल जाता है।

विजातीय-द्रव्य जब फेफड़े में बैठ जाता है तो फेफड़े खराब होने लगते हैं जब मनुष्य नाक से सांस न लेकर मुँह से सांस लेता है, उस समय समझ लेना चाहिये, कि उसके फेफड़े खराब होने लगे हैं। फेफड़े खराब होने की एक परीक्षा और है। जब मनुष्य सोने लगे तो वह किसी से यह देखने के लिये कह दे कि सोते समय उसका मुँह खुला तो नहीं रहता। यदि खुला रहे तो समझना फेफड़े की बीमारी शुरू हो गई है। जिनके फेफड़े मजबूत है वे सदैव नाक से सांस लेते हैं, चाहे सोते हों और चाहे जागते हो।

उपरोक्त कथन से सिद्ध हो गया होगा कि सब रोगों की जड़ केवल विजातीय-द्रव्य है। यदि सब रोगों की जड़ एक ही है तो उन सब की चिकित्सा भी एक ही है। और वह चिकित्सा है प्राकृतिक-चिकित्सा। यदि हम शरीर के भीतर सड़ने वाले नवीन पदार्थ न जाने दे और यदि भीतरी विजातीय-द्रव्य को निकाल दें, तो फिर हम रोगी नहीं हो सकते। हम कम से कम १०० वर्ष तो अवश्य ही जी सकते हैं।

नवीन विजातीय-द्रव्य की उत्पति रोकने के लिये प्राकृतिक आहार करना अत्यन्त आवश्यक है। भोजन जितने सादे ढङ्ग से पकाया जाय, उतना ही जल्द पचेगा! उसमें मसाले डालने की आवश्यकता नहीं है। रबड़ी, मलाई, मालपुआ आदि गरिष्ट भोजन का सर्वथा त्याग करना चाहिये! फलों का सेवन अधिक करना चाहिये। जिस ऋतु में जहाँ जो उत्पन्न हो वे वहाँ के लिये सर्वोत्तम हैं। दूध कच्चा पीना चाहिये। उबालने से उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है।

भोजन कम करना चाहिये। ठूँस-ठूँस करके खाने से मेदा कमजोर हो जाता है। भोजन को खूब कुचल-कुचल कर खाना

चाहिये। जिसमें लार अच्छी तरह मिल जाय। भोजन की यदि यह व्यवस्था रक्खी जायगी तो नवीन विजातीय-द्रव्य शरीर में बनेगा।

अब रही विजातीय-द्रव्य के निकालने की बात, जो भीतर भरा हुआ है। विजातीय-द्रव्य निकालने के शरीर में चार मार्ग हैं, फेफड़े, त्वचा, मूत्रेन्द्रिय और गुदा।

फेफड़, अच्छी हवा द्वारा खून को साफ करते रहते है और उसकी गन्दगी बाहर निकालते हैं। अतएव जरूरी है कि बाहर से साफ हवा नाक द्वारा फेफड़ो में जाय। यह तभी हो सकता है जब मनुष्य स्वच्छ वायु में रहे और स्वच्छ वायु में घूमे और व्यायाम करे। जिस घर मे हवा न आती हो, जिस घर मे रोशनी न आती हो, उस घर में नहीं रहना चाहिये।

त्वचा मे लाखों छिद्र हैं, जिनसे भीतर का मल बाहर निकला करता है। मल मल कर स्नान करने से त्वचा साफ रहता है। रोज सारे शरीर का स्नान न करना एक बुरी आदत है और बीमारी को बुलाना है, यदि त्वचा विजातीय-द्रव्य की अधिकता से ठंढी रहती हो तो शरीर पर भाप लेना चाहिये जिससे छिद्र खुल जायँगे और पसीने के रूप मे विजातीय-द्रव्य बाहर निकल जायगा।

मूत्रेन्द्रिय का सम्बन्ध गुरदे से है। गुरदे में पेशाब बनता है और वह ब्लैडर और लिङ्गेन्द्रिय द्वारा बाहर निकलता है। बड़ी अँतड़ियो से पाखाना बाहर जाता है। विजातीय-द्रव्य गुरदे और बड़ा अँतड़ियों में प्रायः इकट्ठा होता है। इससे विशेष कर मूत्रेन्द्रिय में कुछ कभी-कभी जलन पैदा होती है। गुरदे और पेड़ का विजातीय-द्रव्य उदर स्नान या मेहन स्नान से दूर होता है (विधि आगे देखिये) ये स्नान जमे हुये मल को शीघ्र ढीला करके बाहर निकाल फेंकते है।

इन स्नानों का फल तत्काल दिखलाई पड़ता है। पेट की सफाई हो जाती है और भूख खूब लगती है। यदि मल अधिक हो तो दिन में तीन बार आवश्यकतानुसार ये स्नान लिये जा सकते हैं। कितने समय में संचित् मल निकल जायगा, इसका अनुमान करना कठिन है। कभी कभी तो दो वर्ष तक लगातार चिकित्सा करनी पड़ती है। एक हमारे मित्र थे, वे इतने मोटे थे कि उन्होंने अपने बैठने के लिये एक खास कुरसी बनवाई थी। मैं जब स्कूल में पढ़ता था, तब उनके पास प्राय: जाता था। वे आनरेरी मजिस्ट्रेट भी थे। उन्होंने शरीर हल्का करने के लिये बहुत-सी दवायें खाईं, किन्तु किसी से कुछ लाभ न हुआ। अन्त में उन्होंने जल-चिकित्सा की शरण ली। उन्हें दो वर्ष तक जल-चिकित्सा करनी पड़ी, जिससे वे बिल्कुल अच्छे हो गये और उनका शरीर बिल्कुल पतला हो गया। जब मैं उनसे फिर मिला तो उन्होंने मुझे अपने पहले के कोट पहिन कर दिखलाये जो ओवर कोट की तरह मालूम होते थे। कहने का तात्पर्य्य यह कि विजातीय द्रव्य की तादाद पर ही अधिक या कम समय तक स्नान करने की अवधि बाँधी जा सकती है। जो लोग जन्म के रोगी हैं, उन्हें रोग से मुक्त होने के लिये अधिक समय तक जल-चिकित्सा करनी पड़ती है।

उदर-स्नान और मेहन-स्नान के बाद गरमी लाने की आवश्यकता पड़ती है। बड़े लोग तो हवा में टहल कर गरमी प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु छोटे-छोटे बच्चे कैसे गरमी लावें। उन्हें चाहिये कि वे माता की छाती से चिपट जायँ। उससे उनको गरमी पूरी तरह से मिल जायगी। उनको गरमी लाने का यही एक स्वाभाविक ढंग है।

इस प्रकार जब शरीर के भीतर नवीन विजातीय-द्रव्य न बनेगा और भीतर का संचित मल जल-चिकित्सा द्वारा बाहर

निकल जायगा तो मनुष्य पूर्ण स्वस्थ हो जायगा और उसका जीवन सुख से व्यतीत होगा।

७—औषधियों से हानियाँ

आजकल भारतवर्ष में डाक्टरो और वैद्यों की संख्या क्रमशः बढ़ रही है। बात तो यह होनी चाहिए थी कि रोगी की संख्या घटती, किन्तु शोक इस बात का है कि डाक्टरो और वैद्यों की वृद्धि के साथ रोगियो की संख्या भी दिन ब दिन बढ़ रही है।

लोग समझते हैं कि कोई रोग हुआ, चट दवा खालो, वह अच्छा हो जायगा। उनका यह भारी भ्रम है। वास्तव में औषधियाँ विष हैं और शरीर के भीतर पहुँच कर वे विष उत्पन्न करती हैं। डाक्टर ट्रास का मत है कि सब प्रकार की औषधियाँ शरीर को हानि पहुँचाती हैं। औषधियो से वास्तव में रोग और बढ़ जाता है, घटता नही।

मान लीजिये कि आपके हाथ में दर्द है, डाक्टर उस पर इन्जेक्शन लगाता है, वह रोग भीतर दब जाता है और समय पाकर वह दूसरा रोग हाथ के दर्द से भी भीषण उत्पन्न करता है। विजातीय-द्रव्य का दबाना कहाँ तक उचित है। वह तो और भी अनर्थ पैदा करेगा। पीड़ा वास्तव में तो केवल लक्षण है वह असली चीज नहीं है।

लोगो का कहना है कि जो औषधियाँ खिलाई जाती है वे दस्त और कै कराकर शरीर के विकार को दूर कर देती है। यह ढंग प्राकृतिक न होने से निन्दनीय है। जो काम औषधियो से कराने का बहाना किया जाता है, वह पसीने और जल-चिकित्सा के स्नानो द्वारा प्राकृतिक ढंग से ऐसे ही निकाला जा सकता है। उसके लिये फिर औषधियो की क्या आवश्यकता। मेरी समझ मे औषधियाँ विकारो को हरगिज नहीं निकालती।

प्रकृति स्वयं उनको शरीर के हित के लिये निकालती रहती है।

बहुत से लोग ऐसे ही बिना रोग के औषधियो के खाने के अभ्यासी होते हैं। शक्ति-वर्द्धक अवलेह, शक्ति-वर्द्धक चूर्ण खाते हैं, ताकि मोटे और स्वस्थ हो जायँ। कुछ लोग तो भूख को बढ़ाने के लिए अफीम, मदिरा और माँस का सेवन करते हैं। ये सब वस्तुएँ कामोत्तेजना उत्पन्न करती हैं और मनुष्य को विषय की ओर अधिक प्रवृत्त करती हैं। उन चीजों के सेवन करने वाले का चित्त और शरीर हमेशा चञ्चल रहता है। उन्हें स्वास्थ्य का सुख कभी मिल नहीं सकता।

अमीरों के दरबार मे एक न एक वैद्य जी या डाक्टर साहब की पहुँच जरूर हो जाती है। भइया को जरा-सी सर की पीड़ा हुई कि डाक्टर साहब कोई मालिश की चीज लेकर दौड़े या वैद्य जी चट कोई तेल लेकर सर में मलने लगते है। वे ऐसे-ऐसे अमीरों का जीवन अपनी दवाइयों पर चलाते रहते हैं। ऐसी परिस्थिति होने से प्रायः भइया जी को कभी जुकाम होता है, कभी कब्ज हो जाता है और कभी बुखार हो जाता है।

दरबारी डाक्टर या वैद्य उनके भोजन की बढ़िया से से बढ़िया व्यवस्था करते हैं और उसे दवाओं के सहारे पचाने का प्रयत्न करते हैं। आजकल हमारे धनी भाइयो के पैसे ऐसे ही महान्-महान् पुरुषों में खर्च होते हैं। डाक्टर और वैद्यों को तो कोई फँसना चाहिये सो उनके चंगुल में कोई न कोई धनी फँस ही जाता है।

इससे मनुष्य के नैतिक बल में कितना पतन मालूम होता है। जिस भारतवर्ष के रहनेवाले कितने जितेन्द्रिय होते थे, वहाँ के निवासी अब अपनी जिह्वा पर भी अपना अधिकार नहीं रख सकते। यह बात बतलाई जा चुकी है कि मनुष्य का भोजन यदि स्वाभाविक है, यदि उसका रहन-सहन स्वाभाविक

हो तो उसे कोई रोग नहीं उत्पन्न हो सकता। जिसने जिह्वा और जननेन्द्रिय को अपने वश मे कर लिया, समझ लीजिये वह संसार के रोग को अपने वश मे कर चुका।

डाक्टर जो दवा देते हैं वह कितनी कडुवी होती है। उसको देखकर तबीयत घबड़ाने लगती है। पीते-पीते वमन करने की नौबत आ जाती है। जो वस्तु पीने और सूँघने में खराब लगे ईश्वर जाने वह शरीर को लाभ पहुँचाती होगी या हानि।

मजे की बात एक और है। वह यह कि अँगरेजी दवाओं के लिये मूल्य भी अधिक देना पड़ता है। डाक्टर साहब एक लम्बा नुसखा लिख देते हैं, जिसमें एक रुपये से कम पैसे नहीं लगते। हर एक गरीब इतने पैसे नहीं खर्च कर सकते। देखिये हम अंगरेजी दवाओं से दोहरी हानि उठा रहे हैं। एक तो उसमें लाभ नहीं होता और दूसरे हमारे पैसे कितने अधिक खर्च होते हैं।

हमारी समझ मे अमीर और गरीब सबके लिये जल-चिकित्सा ही रामबाण औषधि है। अन्य जितने प्रकार की बनावटी दवाइयाँ हैं, वे शरीर के रोगों को दबाकर भविष्य के लिये उसका मार्ग और भी अधिक कठिन बना देती हैं। हम यहाँ कुछ डाक्टरों का मत औषधियों के विषय मे देकर इस अध्याय को समाप्त करते है।

अमेरिका के डाक्टर क्लार्क कहते हैं—"चिकित्सकों ने रोगियो को लाभ पहुँचाने की धुन मे उलटे बहुत कुछ हानि पहुँचाई है। उन्होंने हजारों ऐसे रोगियो के प्राण लिये हैं जो यदि प्रकृति पर छोड़ दिये जाते तो अवश्य नीरोग हो जाते। जिन्हें हम औषधि समझते हैं, वे वास्तव में विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रा से रोगी का बल घटता है।"

डा० आलोरी का मत है कि "रोगों को नाश करने में सब से अधिक सहायता उन्हीं लोगों से मिली है, जिन्होंने किसी डाक्टरी कालेज की कोई परीक्षा नहीं दी है और न कोई डिप्लोमा पाया है।"

डाक्टर होम्स कहते हैं—"औषधियाँ आदि तैयार करने के लिये द्रव्य निकालकर व्यर्थ खानें खाली की जाती है, वनस्पतियों का सत्यानाश किया जाता है और साँपो के जहर निकाले जाते हैं। अगर सब औषधियाँ समुद्र में फेंक दी जाती तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार होता।"

डाक्टर अवारनकी कहते हैं—"चिकित्सको की संख्या बढ़ने के साथ ही साथ रोगों की संख्या भी उसी शान से बढ़ती जाती है।"

डाक्टर कूपन का सिद्धान्त है कि औषधियों पर जिसका जितना विश्वास हो उसे उतना ही अज्ञानी समझना चाहिये।

८—बच्चों की देख रेख

इस समय जो हमारी शारीरिक दशा गिरी हुई है उसका मुख्य कारण यह है कि हम लड़कपन से बच्चो की देख-रेख जैसा करना चाहिये, वैसा नहीं करते। हमारे घर की स्त्रियाँ तो अधिकतर मूर्ख है तो फिर बच्चों की देख-रेख कौन करे, माता मारे लाड़-प्यार के दिन भर छोटे बच्चे को खिलाना ही अपना कर्तव्य समझती है।

बच्चे का खाना प्रातःकाल से शुरू होता है। उठते-उठते गाय का गुनगुना दूध भर पेट पिलाया जाता है। यदि बच्चा छोटा है तो दिन भर में ५, ७ मरतबा खूब पेट भर-भर कर उसको दूध पिलाया जाता है। रात को भी जब बच्चा किसी कारण से रोता है तो माता यही समझती है कि वह मारे भूख के रो रहा है। इस

वास्ते रात को भी बासी दूध ठूँस-ठूँसकर पिलाया जाता है।

जो लड़के कुछ बड़े हैं और पैर के बल किसी प्रकार चल लेते हैं, उन्हें नाना प्रकार के अप्राकृतिक भोजन कराये जाते हैं। सब पकवान, मिठाई, नमकीन आदि कड़ी २ चीजों का जलपान कराया जाता है। ९,१० बजे रोटी, दाल, भात, तरकारी भर पेट खिलाथी जाती है। इसके बाद सायंकाल तक जब लड़के किसी को खाते हुए देखते हैं तो उसी के साथ खाने बैठ जाते हैं। इस प्रकार दिन रात मे न मालूम कितने बार लड़के खिलाये जाते हैं। जितने लड़के खाते हैं उतने ही वार वे पाखाने भी जाते हैं।

परिणाम इसका यह होता है कि हमारे देश में लड़कपन में बच्चो को अनेक बीमारियो का सामना करना पड़ता है। आज किसी बच्चे को पाखाने की बीमारी हुई है, तो कल मुँह से दूध गिराता है, यदि किसी बच्चे को कॅवल होता है तो दूसरे दिन किसी बच्चे की पसली चलती हुई दिखलाई पड़ती है। कॅवल, पसली का चलना, दूध गिराना, हरा-हरा पाखाना आना, ज्वर का रहना आदि ऐसी बीमारियाँ हैं जो हमारे बच्चो का पिण्ड नही छोड़ती।

वास्तव में देखा जाय तो बच्चो को बीमारियाँ इसी वास्ते होती हैं कि उनको अप्राकृतिक भोजन आवश्यकता से अधिक कराया जाता है। मूर्ख माता समझती है कि उनके पीछे भूत-प्रेत लगा हुआ है। झाड़ने-फूँकने वाले बुलाये जाते हैं और नाना प्रकार के ऐसे-ऐसे करामात करवाये जाते हैं, किन्तु बच्चा अन्त मे मर जाता है। इस मूर्खता का भी कुछ ठिकाना है। जहाँ बच्चों को डाक्टरो को दिखलाना चाहिये वहाँ उनकी उपयुक्त चिकित्सा न करके हम झाड-फूँक वालों के हाथ मे अन्धविश्वास के कारण डाल देते हैं और अन्त में उस बच्चे से हाथ धो बैठते हैं।

ऐसी प्रथा हिन्दुस्तान में ही दिखलाई पड़ती है। यही कारण

है कि छोटे-छोटे बच्चों के मरने की संख्या और देशों की अपेक्षा हिंन्दुस्तान में अधिक है। आपने देखा होगा कि एक अंगरेज के बच्चो की लड़कपन से कितनी देख-रेख की जाती है। उसकी माता पढ़ी लिखी होती है। बच्चे को ठीक समय से भोजन दिया जाता है, और उनको साफ और सुथरा रक्खा जाता है। प्रात:काल और सायंकाल वे खुली हवा में घुमाये जाते हैं और घर में भी खुली हवा में रक्खे और सुलाये जाते है।

हमारे घर की स्त्रियाँ बच्चो को केवल अधिक खिलाती नहीं है बल्कि उनको बन्द कोठरी मे रखती हैं, खासकर सरदी के दिनो में ताकि उनको ठंढ न लगने पावे। ताजी हवा बच्चो के पास जाने नहीं पाती। जहाॅ माताओं की मूर्खता के कारण बच्चो के स्वास्थ्य को खराब करने वाले इतने कारण मौजूद है वहाॅ बच्चे यदि अधिक संख्या मे मरते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नही है।

लुई कूने ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम Rearing of Children अर्थात् बच्चों का पालन है। यदि उनके आदेशानुसार बाल्यावस्था से बच्चो का पोषण किया जाय तो बच्चे स्वस्थ और दीर्घजीवी हो सकते हैं। उन हजारो बच्चों के प्राण बच सकते हैं जो थोड़ी ही अवस्था के कराल काल के गाल मे पड़ते हैं। उसी का यहाॅ पर हम सार दे रहे हैं।

शुरू में बच्चो का स्वाभाविक भोजन माॅ का दूध है। हम प्राय: देखते हैं कि जिस बच्चे को माॅ का दूध पीने को नही मिलता वह प्राय: मर जाता है। माँ से उतर कर दूध धाय का होता है, सभ्य घरो मे माॅ अपने बच्चे को दूध बहुत कम पिलाती है, दूध पिलाने का काम प्राय: धायो के सुपुर्द किया जाता है। धाय यदि स्वस्थ है तो कोई बात नही, नहीं तो प्राय: बच्चे को हानि पहुँच जाती है। अतएव जहाँ धाय द्वारा बच्चों को दूध

पिलाया जाता है, वहाँ धायों को स्वस्थ रखना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा होते हुए भी माता के दूध की कुछ और ही बात है। उसमें बच्चे के लिए विशेष शक्ति है। माता को ही सब प्रकार से बच्चे के लिए स्वस्थ रहना चाहिए।

प्रायः लोग माता के दूध से सन्तुष्ट नहीं रहते। वे बच्चे को मोटा करने के लिए नाना प्रकार के बोतलों के दूध को प्रयोग मे लाते है। विज्ञापनदाता विज्ञापनों मे नाना प्रकार से इस दूध की प्रशंसा करते हैं और जनता उनके चगुल में फँसा जाती है। इससे बच्चों का पेट कमजोर हो जाता है और वे रोगी हो जाते हैं।

अतएव इस प्रकार के बने हुये बाजारू दूध बच्चों को कभी भी न देना चाहिये। यदि माता के दूध न होना हो या कम होता हो तो गाय का कच्चा दूध दिया जा सकता है। उबाला हुआ गाय का दूध भारी होता है और बच्चों को हर प्रकार से हानि पहुँचाता है। वह देर मे हजम होता है और इसके अलावा दूध की पोषण शक्ति उबालने से नष्ट हो जाती है। डाक्टर कहते है कि कच्चे दूध मे जीवाणु पड़ जाते हैं जो रोग उत्पन्न करते है, यदि बच्चे का पेट निरोग है तो जीवाणुओं से डरने की जरूरत नहीं है। वे पेट में जाते ही मरकर सब हजम हो जाते हैं। यदि लोग कच्चे दूध से डरते हो तो थोड़ा सा उसे गुनगुना कर लें, किन्तु उबाले नही।

वास्तव मे गाय का ताजा दूध देना चाहिए और उसमें थोड़ा-सा पानी मिला लेना चाहिये। यह देख लिया जाय कि जिस गाय का दूध दिया जा रहा है वह तन्दुरुस्त है या नहीं, जो गाये खूंटे मे २४ घंटे बँधी रहती है वे स्वस्थ नहीं हो सकतीं। जो दिन मे चरने जाती है और जिन्हें घास-पात अधिक खाने को दिया जाता है, वे स्वस्थ होती हैं। यदि गाय स्वस्थ न हुई

तो उसके दूध से बच्चे को हानि पहुँचती है। हर समय गाय का दूध ताजा नहीं मिल सकता, इसलिए जब दूध बच्चे को पीने को दिया जाय तब जरा गुनगुना कर लिया जाय तो हानि नहीं है, किन्तु उबाला या औटाया दूध बच्चों को कदापि न देना चाहिये। उबाले हुए दूध से बच्चों के हाथ-पैर मोटे पड़ जाते है और उनके पेट निकल आते हैं।

जब बच्चा जरा बड़ा हो तो उसे चावल या जौ का माँड़ देना चाहिये। दूध या माँड़ में चीनी नहीं मिलाना चाहिये। मीठे से दूध का स्वाद बढ़ जाता है जिससे आवश्यकता से अधिक बच्चा पीने लगता है, नकली रीति से दूध पिलाने में यही तो भारी हानि है। इसके अतिरिक्त चीनी स्वयं पेट के लिये अच्छी वस्तु नही है। ईश्वर ने जितनी चीनी की आवश्यकता समझी है उतनी चीनी उसने हमारे खाद्य पदार्थों में स्वाभाविक रूप से ही मिला दी है।

बच्चे को आवश्यकता से अधिक न खिलाना चाहिये। कम खाने में इतनी हानि नहीं है, जितनी अधिक खाने में। उसके खाने का समय बाँध देना चाहिये। छोटे बच्चों को प्रायः भूख जल्दी-जल्दी लगती है, अतएव उसकी रुचि देखकर और बीच में जब यह अच्छी तरह देख लिया जाय कि इसे भूख लगी है, तो उसे भोजन देना चाहिये।

बच्चा जब कुछ बड़ा हो जाय और उसके दाँत निकल आवे तो दूध के अलावा उसे हिन्दुस्तानी ढङ्ग से सिंकी हुई गेहूँ के आटे की रोटी और दलिया देना चाहिये। रोटी को माँ पहले खूब चबा ले तब बच्चे के मुँह में डाले। यह प्रथा हिन्दुस्तानियों के लिए घिनौनी मालूम होती है, किन्तु इससे बच्चे को बड़ा लाभ पहुँचता है। बच्चा रोटी को अच्छी तरह चबा

नहीं सकता, इसलिए खड़ी रोटी का टुकड़ा उसके पेट में जाने से उसे बदहजमी होने का सन्देह है।

ताजा फल और एक टुकड़ा रोटी शुरू में लड़के के लिए काफी है, रोटी में घी नहीं चुपड़ना चाहिये। लड़कपन से ही बच्चो को समझाते रहना चाहिये कि इससे बढ़कर तुम्हारे लिए दूसरा भोजन नहीं है। इसके पश्चात् उन्हे थोड़ा-सा भात, थोड़ी सी दाल और थोड़ी सी तरकारी खाने को दीजिये, भात का मॉड़ न निकालना चाहिये और दाल छिलकेदार होनी चाहिये। पानी भी उन्हे स्वाभाविक जितना ठंढा मिल सके, उतना ठंढा देना चाहिये। उसे उबालकर नही देना चाहिये।

बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए यह आवश्यक है कि उनके कपड़ो पर भी ध्यान रक्खा जाय। वे इतने ढीले और हवादार हो कि बच्चो को किसी प्रकार की तकलीफ न हो। गर्मी के दिनो मे उन्हे एक पतला-सा कुरता पहनना चाहिये और जहाँ तक हो नंगे पैर रखना चाहिये। गर्मी में उन्हे मोजे और पतलून पहनने की जरूरत नहीं है। बच्चो के सर पर कंटोप बाँधने की आवश्यकता नही है। इससे उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है।

बच्चो को हवादार खुले कमरे मे सुलाना चाहिये। उनके मुँह बन्द न करना चाहिये। उनको हर एक ऋतु मे ओढ़ाना चाहिये, उनको जितना पसीना आवेगा उतना ही फायदेमंद है। बहुत-सी मातायें कमरे के सब दरवाजे को जाड़े में बन्द कर देती हैं, इस भय से कि बच्चे को सरदी लग जायगी। ऐसा समझना मूर्खता है। बन्द कमरे मे बच्चे को कदापि न सुलाना चाहिये।

अब आप लोग उन बालको की ओर ध्यान दीजिये जो पढ़ने के लिए स्कूल जाते हैं। इन बच्चों के भोजन में हम बड़ी लापरवाही करते है। बहुत से बच्चे बासी पराठे या पूड़ी, अचार या किसी दूसरी चटपटी चीज के साथ खाकर स्कूल

जाते हैं। वहाँ जब छुट्टी का घंटा बजता है या बीच ही में स्कूल के बाहर निकलकर चटपटे, मलाई का बर्फ आदि अखाद्य पदार्थ खाते हैं। सायंकाल जब स्कूल से वे घर जाते हैं तो पेट भर खाते हैं और रात को ८ बचे डटकर फिर भोजन करते हैं परिणाम इसका यह होता है कि अधिकांश विद्यार्थी एक न एक रोग से पीड़ित रहते हैं। कम से कम उनकी तबियत दिन भर भारी तो जरूर रहती है और कभी-कभी दरजे में मेदे के बोझ से ऊँघते हुए दिखलाई पड़ते है।

जिन माता-पिता ने बच्चे को पैदा किया है उन्हे उसकी देख-रेख भी पूरी तरह से करना चाहिये। प्रातःकाल स्कूल जब वे आवे तो उन्हे चोकर मिले आटे की रोटी, दाल, भात और तरकारी खाने को दे, सब काम छोड़कर ताजा भोजन उनके लिए बनाया जाय। बच्चों को चटपटे के लिये पैसे न दिये जायँ। स्कूलों की ओर से संयुक्त प्रान्त के स्कूलों में चने के जलपान का अब प्रबन्ध हो गया है। १ बजे के लगभग उनको मिलता है। यह चने का जलपान उनके लिए काफी है।

चार बजे जब बच्चे स्कूल से घर वापस जाते है तो उनको कुछ भी जलपान न दिया जाय और यदि देने की आवश्यकता ही पड़े तो सामयिक फल खाने को दिये जायें। ७ बजे तक उनको वही बे छने आटे की रोटी और तरकारी का भोजन कराया जाय। पूड़ी-कचौड़ी खिलाना हानिकारक है, ताजा गाय का कच्चा दूध भी दिया जा सकता है। हमेशा इस बात पर ध्यान रक्खा जाय कि बच्चो को जल्दी-जल्दी न खिलाया जाय और जो भोजन खाने को दिया जाय वह जल्द पचनेवाला हो।

लड़कों को स्कूल मे जब प्यास लगे तो ठंढा पानी ही पिलाया जाय। सोडावाटर, आइस क्रीम, लेमोनेड आदि पीने की प्रथा बुरी है। ये सब स्वाभाविक पेय पदार्थ नहीं है। बरफ

भी स्वाभाविक न होने के कारण त्याज्य समझना चाहिये।

ऐसा होते हुए भी लड़कों की आदतें घर में ही पड़ती हैं। वे अपने माता-पिता की नकल करके अपना आचरण निर्माण करते है। यदि पिता घर मे चुरुट पीते है तो उन्हे देखकर बच्चा भी चुरुट पीने लगता है। यदि माता-पिता आठ बार घर में बिना सोचे समझे भोजन करते है तो बच्चा भी देखा-देखी आठ बार भोजन करता है। खाने-पीने का, बातें करने का, रहन-सहन का ऊँचा आदर्श यदि घर के लोग रक्खे तो बच्चे को यह कहने की आवश्यकता न पड़ेगी कि बेटा, तुम्हें इस प्रकार संसार मे रहना चाहिये। एक प्रत्यक्ष उदाहरण सौ मौखिक बातो से कहीं अच्छा है।

स्कूल जाने वाले लड़को में एक बात सबसे खराब यह पाई जाती है कि बहुत से लड़के रोज स्नान नहीं करते। वे मुँह में जरा सा तेल लगा लेते है और बालों में कंघी कर लेते है। देखनेवाले को मालूम होता है कि वे स्नान करके आये है किन्तु वास्तव मे ऐसी बात नहीं रहती। जाड़े के दिनों मे शायद १५ दिनों में वे स्नान करते होंगे। जो लाभ अच्छी हवा से फेफड़ो को पहुँचता है वही लाभ स्नान करने से त्वचा एवं शरीर को पहुँचता है। आपने देखा होगा कि जब आप स्नान करते है तो शरीर भर में कैसी फुर्ती एकदम पैदा हो जाती है और चित्त एक दम किस प्रकार प्रसन्न हो जाता है।

दूसरी खराब आदत जो बच्चो में पाई जाती है वह व्यायाम का अभाव है। बच्चों के लिये व्यायाम करना उतना ही आवश्यक है जितना उनके लिये भोजन करना। सबसे अच्छा व्यायाम प्रातःकाल खुली हवा मे टहलना है। प्रत्येक बच्चे को प्रात काल उठकर शौचादि से निवृत्त होकर ४, ५ मील अवश्य टहल आना चाहिये और फिर उसके बाद अपने दैनिक काम मे लगनां चाहिये।

Child is the father of the man, यानी जो आज

बच्चे हैं वेही आगे चलकर देश के होनहार नागरिक बनते हैं। यदि स्वास्थ्यदायक भोजन की ओर बाल्यकाल से ही उनकी प्रवृत्ति लगाई जाय, यदि रहन-सहन का ध्यान बाल्यकाल से दिया जाय तो देश का देश स्वस्थ हो जाय और आगे चलकर उनके रोगों को दूर करने के लिये हाय-तोबा न करना पड़े।

९—जल चिकित्सा के स्नान

जल-चिकित्सा में जिन स्नानों से रोग दूर किये जाते हैं उनके विवरण यहाँ दिये जाते हैं।

स्टीम बाथ (वाष्पस्नान)

स्टीम बाथ कई प्रकार से लिये जाते हैं, त्वचा अपना काम सुचारु से करे इसके लिये यह सबसे बढ़िया स्नान है। जो स्वस्थ रहना चाहते हैं उनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उनकी त्वचा ठीक-ठीक काम करे।

सारे शरीर का स्टीम बाथ—लुई कूने साहब ने शरीर में स्टीम बाथ लेने के लिये एक विशेष यन्त्र तैयार किया है जिसका चित्र दूसरी ओर दिया है। इस यन्त्र से यह लाभ है कि इससे चाहे आप सारे शरीर में स्टीम बाथ ले लीजिय और चाहे शरीर के किसी भाग मे ले लीजिये क्योंकि यह छोटा-बड़ा किया जा सकता है।

चित्र [अ] की तरह यंत्र को रखकर तीन या चार पानी से भरे बरतन आग पर चढ़ा दीजिये, जब पानी खौलने लगे तो रोगी को पीठ के बल बिलकुल नङ्गा यंत्र पर लिटा दीजिये और उसको कम्बल से इस प्रकार ढकिये कि वह चारों ओर जमीन से लटकता रहे जिससे भाप बाहर न निकलने पावे। शुरू में सिर भी ढक लेना चाहिये। फिर पानी से खौलते हुए दो बर्तन कम्बल उठाकर नीचे रखिये। एक पैर के नीचे और

चित्र (क)
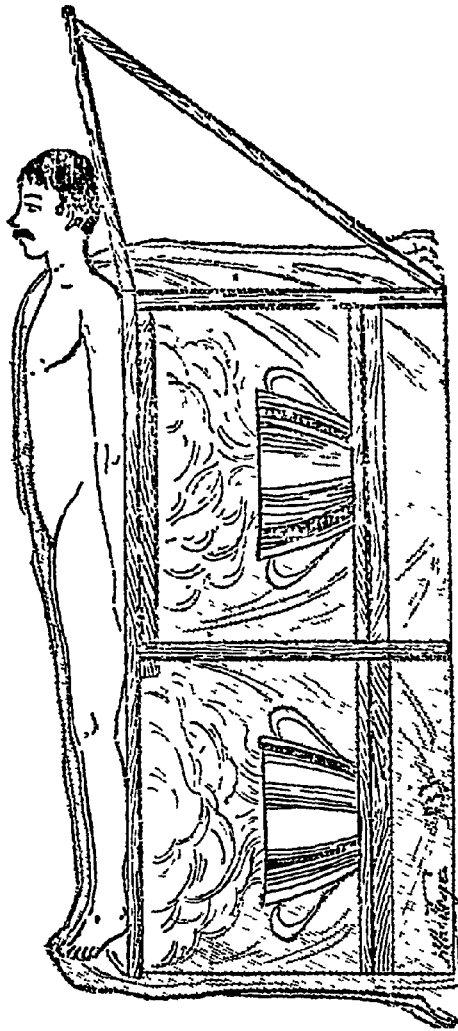
चित्र (ब)

दूसरा पीठ के नीचे। बच्चों के लिए केवल एक बरतन का रखना काफी है। ज्योंही बरतनो से भाफ कम निकलने लगे तो उनको हटाकर आग पर चढ़ा दीजिये और आग पर रखे हुए दो बरतन उनके स्थान पर रखिये। इसी प्रकार काफी भाफ देने के लिए बरतनो को बदलते रहिये।

१० या १५ मिनट के बाद रोगी को उलट जाना चाहिये ताकि भाफ पेड़ू और छाती मे विशेप रूप मे पहुँचने लगे। पसीना यदि अभी तक न आया होगा तो अब जोर से निकलने लगेगा। बच्चो के लिए बरतनो को वार-बार बदलना आवश्यक है। जिन लोगो को जल्दी पसीना नहीं आता उन्हे अपना सिर ढके रहना चाहिये। जिन हिस्सों मे विजातीय-द्रव्य अधिक संचित है उनमे पसीना देर में निकलता है। रोगी की भी यही इच्छा होती है कि वहाँ अधिक गरमी पहुँचाई जाय। उसकी यह इच्छा पूर्ण होनी चाहिये। स्टीम बाथ आवश्यकतानुसार १५ मिनट से आध घण्टे तक लिया जा सकता है।

कमजोर पुरुषो को अथवा जिनकी दशा भयङ्कर है और पागल आदि उन्माद रोगियो को स्टीम बाथ कभी नही देना चाहिए। जिन लोगों का स्वभावत. पसीना आता है उन्हें भी स्टीम बाथ लेने की जरूरत नही है। एक सप्ताह में दो बार से अधिक स्टीम बाथ नहीं लेना चाहिये।

स्टीम बाथ लेकर ठंढे पानी का (६८°, ८१° फैरन हाइट) हिप बाथ शरीर को ठंढा करने के लिए लेना चाहिये। हिप बाथ के शुरू में या अन्त में पेड़ू के अतिरिक्त शरीर के अन्य भागो को भी ठंढा करने के लिए ठंडे पानी से धो डालना चाहिए। इस रीति से पसीना आने पर कोई भीतरी उत्तेजना नहीं होती। गरमी के बाद ठंडे पानी के स्नान से बिलकुल न डरना चाहिये। लोहे का स्टील बनाने के लिए पहले उसे आग

में लाल करते हैं और फिर उसे शीतल जल में बुझाते हैं। इसी प्रकार स्टीम बाथ के बाद जब मनुष्य का शरीर भी ठंढा किया जाता है तो वह मजबूत बनता है।

स्टीम बाथ लेकर शरीर को इस प्रकार गरम करना चाहिए कि कुछ पसीना आ जावे। ताकतवर पुरुष खुली हवा मे टहलें अथवा व्यायाम करें और कमजोर पुरुषों को गरम कपड़े ओढ़ कर चारपाई पर लेट जाना चाहिये।

स्टीम बाथ बेंत की कुर्सी मे बैठकर लिया जा सकता है। रोगी उसमे बैठ जाय और चारों ओर अपने को कम्बल से ढक ले। कुर्सी के नीचे एक खौलते हुए पानी का बरतन रक्खा जाय और रोगी के पैर एक कम खौलते हुए दूसरे बरतन के ऊपर दो पतली-पतली लकड़ियाँ रखकर उसी के ऊपर रख दिये जायँ।

(आराम कुर्सी या देहातों मे एक छोटी खटिया से भी स्टीम बाथ लिया जा सकता है किन्तु लुई कुने साहब के यंत्र मे स्टीम बाथ लेते समय सुविधा अधिक होती है।)

पेड़ू का स्टीम बाथ—यह स्टीम बाथ कठिन से कठिन उदर रोगों में लिया जाता है। इसके लेने का ढंग चित्र (ब) से स्पष्ट हो जाता है। इसके बाद हिप बाथ लेना अत्यन्त आवश्यक है। स्त्री सम्बन्धी रोगों में हिप बाथ की जगह सिट्स बाथ लेना चाहिये। इस स्टीम बाथ के लेने का ढङ्ग वही है जो पूरे शरीर के स्टीम बाथ लेने का है।

गरदन और सर का स्टीम बाथ—चित्र (स) मे यह स्टीम बाथ स्पष्ट हो जाता है। भाप का बरतन बेंच के ऊपर एक तख्ते पर रक्खा जाता है और सर और गर्दन मे उस समय तक भाप दी जाती है जब तक उनसे पसीना न निकलने लगे। पसीना निकलते ही दर्द बन्द हो जायगा। दाँत की पीड़ा में तो विशेष रूप से देखने में आता है। सर और छाती को यदि वे

गरम हो तो ठढे पानी से धो डालना चाहिये और फौरन ही हिप बाथ या सिट्ज़ बाथ लेना चाहिये। यदि दर्द कुछ देर बाद फिर होने लगे तो गरदन का स्टीम बाथ सारे शरीर का स्टीम बाथ बारी-बारी से लेना चाहिये। सारे शरीर के स्टीम बाथ में इस बात का ध्यान रहे कि पेड़ू मे भी भाप दी जाय।

पृथक-पृथक अंग के स्टीम बाथ बड़े महत्व के होते है। उनसे लाभ जल्द पहुँचता है। कान के दर्द में, आँख की बीमारी मे, नाक और गले की बीमारी मे, दाँतो की पीड़ा मे और फोड़े फुन्सी और भीतर मुँह वाले फोड़े में तो ये अचूक लाभदायक सिद्ध हुये हैं।

विशेष अंगो के स्टीम बाथ किसी विशेष यंत्रो की सहायता से भी दिये जा सकते हैं। पेड़ू का स्टीम बाथ साधारण कुर्सी मे लिया जा सकता है। सर मे स्टीम बाथ लेने के लिये एक छोटो सी चौकी से काम लिया जा सकता है, जिसके ऊपर खौलते हुए पानी का बरतन रक्खा जा सके।

धूप स्नान (सन बाथ)

धूप या सन बाथ उस दिन लिया जा सकता है जिस दिन सूर्य्य खूब चमक रहा हो और दिन मे साधारण गरमी हो। उसके लेने की विधि इस प्रकार है। रोगी को बहुत पतला कपड़ा पहनकर चटाई या (ऊनी कम्बल पर) लेट रहना चाहिये, जहाँ धूप तो आती हो लेकिन हवा न लगती हो। जूते और मोज़े एक दम न रहे। स्त्रियो को अपनी चोली उतार डालनी चाहिये। सर और चेहरे को बड़े-बड़े पत्तो द्वारा धूप से बचाना चाहिये। इसके लिए केले के पत्तो से अच्छा काम चल सकता है। पेड़ू को भी पत्तो से ढाँक रखना चाहिये। पत्ता न मिले तो गीले कपड़े से ढाँक दिया जाय।

धूप स्नान आध घण्टे से डेढ़ घंटे तक आवश्यकता के अनु-

सार लिया जा सकता है। यदि, किसी रोगी को तब भी पसीना न निकले तो उसे डेढ़ घंटे से भी अधिक धूप में लेटे रहना चाहिये। बहुत कड़ी धूप में बहुत देर तक सन बाथ लेना उचित नहीं है। सन बाथ लेते समय जिनके सर में दर्द होने लगे उन्हें पहले थोड़े ही समय तक सन बाथ लेना चाहिए। यह दशा विशेषकर उन रोगियो की होती है जिनको या तो पसीना आता ही नही और कभी आता भी है तो बड़ी कठिनाई से।

सन बाथ के बाद ढीले हुए विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालने के लिये हिप बाथ या सिट्ज बाथ अत्यन्त आवश्यक है। जिन अत्यन्त बीमार रोगियों को ठंढे हिप बाथ या सिट्ज बाथ के पश्चात जल्दी गरमी नही आती उन्हें सर ढॉककर धूप मे गरमी लाने के लिये फिर बैठ जाना चाहिये या धूप में टहलना चाहिये। अधिक बीमार रोगियो के लिये सन बाथ कष्टप्रद है, इसलिये शुरू में न देना चाहिये।

सनबाथ लेने का सबसे बढ़िया समय १० से ३ बजे तक का है। यदि इच्छा हो तो दोपहर के भोजन के पश्चात् सनबाथ लिया जा सकता है किन्तु भोजन के आध या एक घंटे बाद लेना उत्तम है! क्योंकि भोजन पचाने के लिये शरीर को गरमी की जरूरत होती है और सनबाथ के पश्चात् जो ठण्ढे स्नान लिये जाते है उनसे गरमी कम होती है।

किसी विशेष अंग के सनबाथ

लुई कूने साहब ने गुमडियों मे, बहते हुए घावों में, सूजन में, रसौली मे, शरीर के भीतर किसी अवयव के फट जाने में और सब प्रकार के दर्द में सन बाथ का बड़ी सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। किसी विशेष अंग का सन बाथ उसी प्रकार लिया जाता है जिस प्रकार पूरे शरीर का सन बाथ। अंतर केवल इतना ही है जिस अंग पर सन बाथ लेना हो तो वह एक

दम नंगा कर दिया जाय और उस पर दो पत्ते रख दिए जॉय।

सन बाथ के विषय में साधारणतया यह कहा जा सकता है कि पानी और आहार के साथ सबसे उत्तम हमारा चिकित्सक सूर्य ही है। दूसरा कोई भी ऐसा मार्ग नही है जिससे हमको सूर्य के समान लाभ प्राप्त हो सके। पुराने रोगों के विजातीय-द्रव्य को ढीला करनेके लिए सन बाथ से बढ़कर कोई दूसरा लाभदायक सरल उपाय नही है। एक उदाहरण से यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जायगी। मिट्टी से सना हुआ कपड़ा यदि धूप मे डाला जाय तो मिट्टी शीघ्र सूख जाती है, किन्तु यदि हम कपड़े को एक बार पानी में भिगोवे और बार-बार धूप मे रक्खे तो धूप मैल को थोड़ा बहुत खींच लेती है और कपड़ा साफ हो जाता है।

इस पृथ्वी पर जीव मात्र का जीवन धूप, पानी, हवा और मिट्टी के प्रभाव पर है जो एक-एक के बाद पड़ा करता है। पौधे और वृक्ष तभी उग सकते है, जब उनको धूप, पानी हवा और मिट्टी मिलती है। जीवन के ये साधन जब अलग हो जाते हैं तो पौधे और वृक्ष या तो छोटे-ही रह जाते है यह सूख जाते है। ऐसे ही हाल सब जीवधारियों और मनुष्य प्राणी का भी है। अभाग्य वश बहुत से लोग आवश्यकता से अधिक धूप और जल से परहेज करते है। ऐसी दशा में शरीर नाजुक हो जाता है और रोग को जल्द पकड़ता है। एक तन्दुरुस्त मनुष्य बिना किसी हानि के धूप सह सकता है। एक रोगी या कमजोर मनुष्य धूप से स्वभावत. बचता है क्योंकि इससे उसको बेचैनी मालूम होती है। शरीर के भीतर विजातीय-द्रव्य के ढोले पड़ने से यदि मल निकालने वाली इन्द्रयॉ कमजोर है तो सरदर्द, सुस्ती, थकावट और भारीपन मालूम होते है। यदि ये सब विकार उत्पन्न होने लगें तो समझ लेना चाहिये कि विजतीय-द्रव्य अपनी जगह से ढीला होकर निकलनेपर अया है। बिना हिप या सिट्ज बाथ लिये केवल

सन बाथ से ही हमारा मनोरथ नहीं सिद्ध हो सकता। जल से जीवन-शक्ति बढ़ती है और उसे बढ़ाना हममे से प्रत्येकका उद्देश्य होना चहिये। पौधे भी धूप और पानी के बारी-बारी असर से उगते हैं और उन्हें यदि अकेली धूप ही मिले तो वे जल्द सूख जाते हैं। प्रकृति में जिस प्रकार काम होता है जब हमें यह मालूम हो जाता है तो इस बात के समझने मे हमे कोई भी कठिनता नहीं रह जाती कि सन बाथ से उत्पन्न खराबियाँ ठण्डे स्नानो से किस प्रकार दूर हो जाती है। सन बाथ के साथ लुई कूने के ठण्ढे स्नानो के करने से रोग बहुत ही शीघ्र अच्छे होते है।

कोई-कोई ख्याल करते होंगे कि धूप का प्रभाव ढके हुये शरीर के हिस्से की अपेक्षा नंगे शरीर के हिस्से पर अधिक होता होगा किन्तु उनका ऐसा ख्याल करना भूल है। प्रकृति की ओर देखने और ध्यान से इसका उत्तर मिल जाता है। अँगूरो की ओर देखिये। क्या अँगूर धूप से बचाने के लिये पत्तो की आड़ मे नहीं हो जाते। जो पत्तियो से अच्छी तरह ढके रहते है वे मीठे होते है और अच्छी तरह पकते है; किन्तु जो खुले रहते है वे या तो खट्टे हो जाते है या उनकी वृद्धि मारी जाती है। शाहदाने के वृक्ष की भी यही दशा उस समय होती है जब फल तो पक जाते है; किन्तु पत्तियाँ कीड़े खा जाते है। ऐसी दशा मे फल बिना बड़े ही सूख जाते है। यदि साया के लिये पत्तियाँ रहे तो यह दशा न हो। पकने के लिये हरेक फल को पत्तियो की अवश्यकता है। उपरोक्त उदाहरणों से यह बात भली
सूर्य की परोक्ष और अपरोक्ष धूप का क्या प्रभाव होता है।

नंगे सर पर धूप का प्रभाव हानिकारक होता है और इससे नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते है। यदि हम शरीर को कपड़े से ढके रहे तो चमड़े के छेद अति शीघ्र खुल जाते है और उनमे से पसीना भी अति शीघ्र निकलने लगता है।

पसीना और भी अधिक उस समय निकलता है, जब हम उसमें ऐसी चीज रखते हैं जिसके भीतर पानी हो। ऐसा पानी ताजे और हरे पत्तों मे हुआ करता है।

सूर्य की किरणों का प्रभाव काले कपड़ो में दूसरा होता है और सफेद कपड़ो मे दूसरा। इसलिये यह बात विचारणीय है कि हम बाथ के समय सिले कपड़े पहिने या हरे-हरे पत्तो को काम मे लावे। लुई कूने का अनुभव है कि विजातीय-द्रव्य में हरे-हरे पत्तो से छनकर जो किरने जाती हैं वे ही उसको और सब प्रकार के वस्त्रो से कही अधिक ढीली करती है। सन बाथ के साथ और दूसरे ठंढे स्नानों से पेड़ू में पड़ी हुई गुमड़ियों को, दमा को और गठिया को बड़ा लाभ हुआ है।

हिप बाथ या उदर स्नान—इसके लेने की विधि इस प्रकार है, जैसा चित्र नं० ८ में है। एक टब मे ४८° से ६८° फारेन हाइट तापमान का जल इस प्रकार भरिये कि वह ऊपर नाभी तक रहे और नीचे जाँघो तक। स्नान करने वाला फिर उसमें बैठ कर एक मोटे गीले अँगवछे से नाभी से नीचे की तरफ और एक कोख से दूसरी कोख तक शरीर को रगड़े जब तक शरीर मे ठण्ढक न मालूम होने लगे।

प्रथम-प्रथम यह स्नान ५ से १० मिनट तक लेना चाहिये। इसके बाद अभ्यास पड़ने पर समय बढ़ा देना चाहिये। कमजोर मनुष्यो और बच्चो के लिये थोड़े ही मिनटो का स्नान काफी है। स्नान करते समय इस बात पर पूरा ध्यान रक्खा जाय कि पैर और शरीर के ऊपरी धड़ पर पानी न पड़ने पावे। पैरो में कम्बल डाल लिया जाय तो और भी अच्छा है। स्नान के बाद व्यायाम द्वारा शरीर को गरम करना आवश्यक है। जो रोगी अत्यन्त निर्बल है या सख्त बीमार है, उन्हें गरमी लाने के लिये खूब ओढ़कर चारपाई पर लेट रहना चाहिये। यदि गरमी इस

प्रकार जल्दी न आवे तो पेड़ू पर ऊनी पट्टी बाँध देना चाहिये।

उदर स्नान रोगी की दशा के अनुसार दिन में एक से तीन बार तक लिये जा सकते है। जल का तापमान भी रोगी की दशा के अनुसार रखना आवश्यक है। किसी-किसी रोग की दशा में केवल मेहन स्नान ही लिये जाते हैं और किसी-किसी में उदर और मेहन दोनों लिये जाते हैं।

सिट्ज़ बाथ या मेहन स्नान—स्त्री-सम्बन्धी रोगों के लिये यह स्नान अत्यन्त लाभकारी है। उसके लेने की विधि इस प्रकार है। स्त्रियों के लिये टब में एक स्टूल रख दिया जाता है। तब उसमे इतना पानी भरा जाता है कि वह स्टूल पर बैठने के स्थान पर चारों ओर टकराता रहे लेकिन बैठने की जगह गीली न हो। स्नान करने वाली फिर उसी स्टूल में पैर टब के बाहर निकालकर बैठ जाये और फिर मोटे कपड़े को पानी मे भिगो-भिगो कर जननेंद्रिय को धोवे। कपड़े से एक बार जितना पानी उठाया जाय उतना उठाना चाहिये। जननेंद्रिय को जोर से नहीं रगड़ना चाहिये कि छिल जाय। एक दम नङ्गा होकर यह स्नान करना चाहिये। टाँग, पैर और शरीर का ऊपरी भाग शुष्क रहना चाहिये। यदि चूतड़ पानी से भीग जाय तो कोई हानि नहीं। मासिक धर्म के समय यह स्नान बन्द रखना चाहिये। यदि खून का निकलना आरोग्यता की दशा से अधिक हो तो इस समय भी स्नान लेते रहना चाहिये। मासिक धर्म मे २ या ३ दिवस से अधिक नहीं लगना चाहिये। हद से हद ४ रोज। या ४ रोज से अधिक खून जारी रहे तो यह समझ लेना चाहिये कि स्त्री की रुग्ण अवस्था है। जल का तापमान साधारणतया ५०° से ६०° फैरन हाइट होना चाहिये। खास-खास रोगों मे ६६° तक दिया जा सकता है।

यह स्नान रोगी की आयु और उसके रोग के अनुसार १० मिनट से एक घण्टे तक लिया जा सकता है। सरदी मे कमरे को

चित्र (स)

चित्र (ठ.)
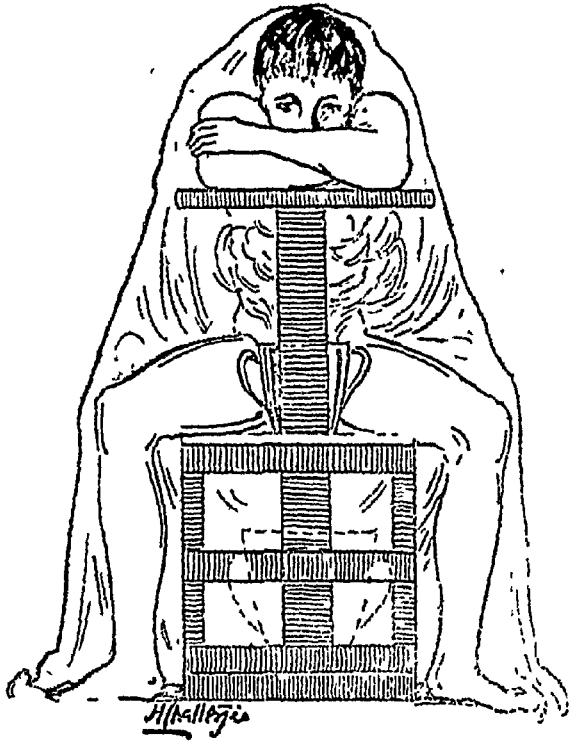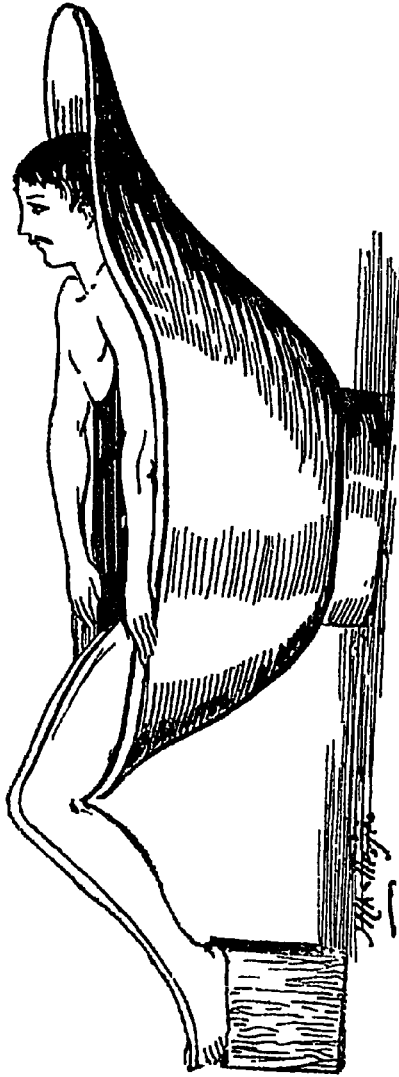
गरम करना चाहिये। जल जितना ठंढा होगा उतना ही लाभ अधिक होगा। किंतु इतना ठंढा न होना चाहिये कि स्नान करने वाले के हाथ जलने लगे। गरम देशों में अधिक ठंढा पानी नहीं मिल सकता किंतु वहाँ उतना ही ठंढा पानी काम में लाना चाहिये जितना प्रकृति से मिल सके। इस बात की चिंता न करनी चाहिये कि यहाँ बहुत ठंढा पानी नहीं मिलता इसलिए लाभ कम होगा। गरम देशों मे जल और वायु में वही सम्बन्ध होता है जो ठंढे देशों में होता है। दोनो दशाओं में स्नान का प्रभाव एक ही सा होता है। यह रिपोर्टों से भली भांति सिद्ध हो चुकी है।

जिस स्थान में हिप बाथ लेने का टब न मिले वहाँ कोई भी कपड़ा धोने का टब सिट्ज बाथ के काम में आ सकता है उसे इतना बड़ा अवश्य होना चाहिये कि एक स्टूल रक्खा जा सके और ५ या ६ गैलन पानी समा सके। (एक गैलन ३ सेर १० छटॉक के बराबर होता है) यदि टब छोटा होगा और कम जल से यह स्नान किया जायगा तो लाभ कम होगा। कुएँ का ठंढा पानी चश्मे के ताजे पानी से अधिक लाभदायक है किन्तु जहाँ केवल चश्मे का ही पानी उपलब्ध है, वहाँ उसी से काम लेना चाहिये।

पुरुषों के लिये—पुरुषों के लिए सिट्ज बाथ लेने की वही विधि है जो स्त्रियों के लिए। स्नान करने वाले पुरुष को चाहिये कि वह लिङ्ग को बन्द करले और फिर जिन उँगलियों से सुविधा हो उस के अग्रभाग के चमड़ा खीचकर बायें हाथ से पानी के भीतर ले जावे और कपड़े से लगातार उसे रगड़-रगड़ कर धीरे-धीरे धोवे। अधिक न रगड़े कि चमड़े छिल जाय। इस स्नान मे गलती न करना चाहिए, किसी विशेषज्ञ से पूछ लेना अच्छा है।

नोट १—हमारे देश में मिट्टी के घड़े में रक्खा हुआ जल सिट्ज बाथ के लिये अच्छा है।

नोट २—यदि टब न मिल सके तो मिट्टी की नाद ऊँचे स्थान में गाड़कर और उसमें काठ की एक पतली पटरी रख कर भी सिट्ज बाथ लिया जा सकता है।

नोट ३—मुसलमानों के यहाँ लिङ्ग का अग्रभाग खतने के समय काट दिया जाता है। उनको उस स्थान को तौलिये से रगड़ना चाहिये जो टाँगों और अंडकोष के बीच में है और कमर के नीचे के भाग को स्टूल के ऊपर ३ अँगुल ऊँचा रखना चाहिये।

जो रोगी भीतर सूजन से पीड़ित हैं या जिनके भीतर अंगो मे दीर्घकालीन रोग के कारण सड़न आ गई हो उन रोगियो का भीतरी सूजन पहिले ही स्नान से नीचे खिंचकर जननेन्द्रिय के अगल-बगल आ जाता है। इससे घबड़ाना न चाहिये। स्नान पूर्ववत् करते रहना चाहिये और मोटे कपड़े की जगह पतले कपड़े का व्यवहार करना चाहिये।

स्टूल के ऊपर ३ अंगुल पानी चढ़ाकर बहुतेरे रोगियो को सफलता शीघ्र मिल सकती है, किन्तु ऐसी दशा में जल ६३° से ७३° फैरन हाइट होता है। इसमें चूतड़ पानी के भीतर होते हैं और शेष क्रिया वैसी ही होनी है।

कुछ लोगों को भ्रम होता होगा कि सिट्ज बाथ में धोने के लिए जननेद्रिय का ही चमड़ा क्यों चुना गया है, शरीर का कोई और हिस्सा क्यो नही चुना गया। किंतु वास्तव में सच्ची बात यह है कि इस काम के लिए इससे बढ़कर दूसरा स्थान है ही नहीं। शरीर के किसी भी हिस्से में मुख्य मुख्य रगों के इतने सिरे नहीं है जितने जननेन्द्रिय के अग्रभाग में। सिरे उन रगों की शाखायें हैं जो रीढ़ से निकलती हैं और ये ही नरवस सिम्पैथी-

कस (यह गिलटियों की एक कतार है जो खोपड़ी से गुदा की हड्डी तक पीठ के मोहरों के दोनों ओर फैली हुई है) की भी शाखायें हैं। इनका सम्बंध मतिष्क से है इसलिए उनको धोने से सारे शरीर पर उसका प्रभाव पड़ता है। जननेंद्रिय मे धोने से ही सारे शरीर पर प्रभाव डाला जा सकता है। शरीर भर की सारे शरीर रूपी वृक्ष की शाखायें वास्तव में आकर जननेंद्रिय मे ही मिलती हैं। जननेंद्रिय को धोने से भीतर बढ़ी हुई गरमी केवल कम नही हो जाती बल्कि रगों में भी विशेष ताजगी आती है। रगों मे ही क्यों, इससे शरीर के छोटे से छोटे हिस्से में जीवन-शक्ति पहुँचती है। नश्तर से जिन अंगों का सम्बन्ध विच्छेद हो गया है वहाँ शक्ति अलबत्तो नहीं पहुँचती। जिन लोगो ने जल-चिकित्सा का अनुभव किया है उन्होंने देखा होगा कि सिट्ज बाथ में वे सब बाते मौजूद हैं जिनसे सब रुकावटें दूर होती है जो शरीर को अपना काम नहीं करने देतीं।

सृष्टि मे जो समानता का भाव रहता है उस ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। इसको एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। गरम पानो का एक ग्लास और ठंढे पानी का एक ग्लास दोनो अपने पास रखिये। गरम ग्लास ठण्ढे को गरम करेगा और ठढा गरम को ठंढा करने का प्रयत्न करेगा। इस प्रकार दोनों का तापमान थोड़ी देर में एक हो जायगा। यह समानता केवल निर्जीव पृथ्वी में ही नही होती जैसा लोग ख्याल करते हैं। यह समानता शरीर और जिन परिस्थितियो मे वह रहता है, उनमे भी पाई जाती है। भीतर से बाहर को और बाहर से भीतर को एक प्रकार की तबदीली गरमी में होती है जिसको यदि बिजली की लहर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। जिस प्रकार प्राकृतिक लहर में बल होता है उसी प्रकार इस लहर में भी बल होता है। यह बल ज्यों-ज्यों बढ़ता

जाता है--जैसे कि ज्वर की दशा में--त्यों-त्यों उस मनुष्य की दशा भी असहनीय होती जाती है और वैसे ही रोग के चिन्ह भी बढ़ते जाते हैं। जिस प्रकार आँधी मे दम घोंटने और बेचैनी उत्पन्न करने की शक्ति होती है उसी प्रकार विजातीय-द्रव्य का प्रभाव शरीर पर होता है। ऐसी दशा में शरीर में समानता लाने से अच्छी बात और दूसरी क्या हो सकती है। बढ़ी हुई गर्मी कम दर्जे की गर्मी से मिलकर समान दशा पर आनी चाहिये और बढ़ी हुई गर्मी को साधारण गर्मी के दर्जे पर आना चाहिये। वह साधन जो सबको एक अवस्था पर ला सकता है, केवल सिट्ज बाथ है। अनेक रोगियां पर इसने अपना अच्छा प्रभाव डाला है। यदि किसी रोगी को लाभ न पहुँचे तो समझना चाहिये कि उसकी जीवन-शक्ति नष्ट हो चुकी है।

शरीर से विजातीय-द्रव्य से भरे हुए शरीर की उपमा हम उस मशीन से दे सकते हैं जिसमें मोर्चा लगा हो। ऐसे शरीर का हाजमा खराब हो जाता है और जो भोजन किया जाता है उससे शरीर अपनी पूर्व शक्ति को नहीं प्राप्त कर सकता। भूख अधिक लगती है और नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजनो में चित्त दौड़ता रहता है। लोग खाते भी रहते है किन्तु इससे कोई लाभ नहीं होता; पाचन-शक्ति और भी कम होती जाती है।

यदि हम विजातीय-द्रव्य को हटाकर शरीर की जीवनी-शक्ति को बढ़ाना चाहते हैं तो हम ऊपर बताये स्नान और स्वाभाविक भोजन द्वारा बढ़ा सकते है। उनसे खोई हुई पाचन-शक्ति बहुत जल्द प्राप्त की जा सकती है। ये स्नान विजातीय-द्रव्य को बाहर निकाल देते हैं इससे भविष्य में भी फिर बीमारी के होने की सम्भावना नहीं रह जाती। उबलते हुए पानी की भाप को यदि हम ऊपर नहीं उठने देना चाहते तो चूल्हे की लकड़ी को हटा देना चाहिये, यानी गरमी कम देना चाहिये।

तापमान के बढ़ने से ही शरीर में बीमारी उत्पन्न होती है और यदि स्नान द्वारा शरीर की गरमी कम कर दी जाय तो बीमारी दूर की जा सकती है। जिस प्रकार मशीन एक ही स्थान से धीमी या तेज चलाई जा सकती है, उसी प्रकार शरीर की जीवनी-शक्ति पर एक ही स्थान से प्रभाव डाला जा सकता है और वह सिट्ज बाथ द्वारा है।

सिट्ज बाथ से खोई हुई शक्तियों की वृद्धि किस प्रकार होती है इसका अनुमान रोगी को स्वयं नहीं होता। वे तो उसी समय पूर्ण रूप से महसूस करते हैं जब वे पूर्ण रूप से चंगे हो जाते हैं।

बाहरी गरमी को शान्त करने और विजातीय-द्रव्य को निकाल बाहर फेंकने में मिट्टी की पट्टी भी बड़ा काम करती है। घावों में तो इससे अकथनीय लाभ पहुँचा है।

किसी को यह न समझ लेना चाहिये कि जल-चिकित्सा से सब रोगी अवश्य अच्छे हो जायँगे। लुई कूने का कहना है कि इससे सब रोग अवश्य अच्छे हो सकते हैं, सब रोगी नहीं। जिन लोगों की जीवनी-शक्ति नष्ट हो चुकी है, जिनका हाजमा एकदम खराब हो चुका है उनको पूरा-पूरा लाभ जल-चिकित्सा से पहुँचना कठिन है।

कुछ ऐसे रोगसाध्य मरीज होते हैं जिनको बहुत समझ-बूझकर जल-चिकित्सा के स्नान करवाना चाहिये। उनकी हालत में बीच-बीच में स्नान बन्द भी किये जा सकते हैं। उन रोगियों को केवल पुस्तक पढ़कर चिकित्सा नहीं शुरू करना चाहिये। हानि से बचने के लिये आवश्यक है कि वे किसी विशेषज्ञ की सम्मति से चिकित्सा करें।

१०—हम क्या खायें ? और क्या पियें ?

दुनियाँ की सारी बीमारियाँ केवल कुपथ्य के कारण उत्पन्न होती हैं। कुपथ्य से विजातीय द्रव्य पैदा होता है और विजातीय-द्रव्य से रोग पैदा होता है। अतएव जल-चिकित्सा में यह जानना परम आवश्यक है कि हम क्या खायें ? और क्या पियें ?

विद्युत की शक्ति उत्पन्न करने के लिये कुछ मुख्य-मुख्य तत्वों (elements) की आवश्यकता पड़ा करती है। आम्ल पदार्थ (acid) में जिंक् (जस्ता) और कार्बन (carbon) की पटरियों को डालने से विद्युत शक्ति पैदा होती है। फिर यही शक्ति तार द्वारा धन (posetune) और ऋण (negaline) नाम से प्रवाहित धारा में लाई जाती है। यदि जस्ता और कार्बन के स्थान मे हम उन्हीं की तरह दूसरे तत्वों को प्रयोग में लावें या उन्ही को पीसकर काम मे लावें तो अन्तर मालूम होने लगेगा। या तो विद्युत पैदा न होगी या पैदा होगी तो बहुत कम। मनुष्य के शरीर में जीवन-शक्ति का भी यही हाल है। कम व अधिक जीवन-शक्ति का उत्पन्न होना भोजन के उचित चुनाव पर है। वायु में जो हमारा मुख्य भोजन है यह बात भली-भांति देखी जा सकती है। यदि हम एक मनुष्य को साधारण वायुमंडल से ले जाकर दूपित वायु के वायुमंडल मे रख दे तो वह कुछ मिनटो मे मर जायगा। नवीन परिस्थिति का उसकी जीवनी-शक्ति पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

खराब भोजन का प्रभाव धीरे-धीरे देर में प्रतीत होता है। स्वाभाविक भोजन और हलाहल विप मे जमीन आसमान का अन्तर है। स्वाभाविक और अस्वाभाविक भोजनों का अन्तर कठिनता से मालूम होता है। किन्तु ज्योंही मालूम होने लगे कि

हमे बदहजमी हो रही है और पेट मे विजातीय-द्रव्य इकट्ठा होने लगा है तो उसी समय हमे समझ लेना चाहिये कि हमारा भोजन स्वाभाविक नहीं है और उसे छोड़ देना चाहिये।

खराब भोजन और खराब पाचन-शक्ति जीवन मे होने वाले नित्यप्रति उदाहरणो से और भी अधिक समझाये जा सकते है। हम लोगो से मजबूत और मोटे-तगडे मनुष्यो से रोज मुलाकात होती है। वे कहते है कि हम भोजन कम करते है लेकिन न मालूम क्यो इतने मोटे होते जा रहे है। ऐसे मनुष्य वस्तुत. अधिक खाने से ही मोटे होते है। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी है जो अपनी समझ से अच्छा भोजन भरपेट करते है किन्तु वे दुबले-पतले रहते हैं। यदि उनके भोजन को देखा जाय तो उन्हे अधिक हृष्ट-पुष्ट होना चाहिये। बात यह है कि वह भोजन बिना यथेष्ट लाभ पहुँचाये शरीर से बाहर निकल जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि खाने-पीने के पदार्थों के निकल जाने से ही पाचन शक्ति की शुद्धता नहीं प्रगट होती है।

इस प्रकार इस संसार मे साधारणतया दो श्रेणी के पुरुष होते है। एक श्रेणी के पुरुष कहते है कि हम बहुत कम खाकर मोटे तगड़े हो सकते है और दूसरी श्रेणी के पुरुष कहते हैं कि हम बहुत खाकर भी दुबले-पतले रह सकते है। दोनो में प्रत्यक्ष रूप से विरोध होते हुये भी दोनो दशाओं मे रोग का कारण एक ही है और वह कारण है खराब पाचन-शक्ति और खराब भोजन। यह सिद्धांत स्थिर कर लेने के अनन्तर अब यह भली-भाँति समझ मे आ सकता है कि क्षयी रोग से पीड़ित मनुष्य को भूख खूब लगती है और अपनी समझ मे वह खाता भी काफी है। लेकिन उसका खून नहीं बनता और वह दुर्बल रहता है और दूसरी ओर मोटे-तगड़े और आदमियों को भूख नहीं लगती।

अतएव भोजन की अधिकता से बचने का मार्ग खोज

निकालने का काम कोई कठिन नहीं है। बुद्धिमान पाठक इस बात को स्वीकार करेंगे कि अंडे, गोश्त, मदिरा, अंगूरी शराब, जौ की मदिरा, कहवा, चाय आदि पदार्थ स्वास्थ्य-बर्द्धक और भोज्य-पदार्थ नही हैं बल्कि वे पदार्थ तन्दुरुस्ती को बढ़ाने वाले और भोज्य-पदार्थ कहलाने योग्य हैं जो आसानी से और शीघ्र पचते हैं। जितना शीघ्र भोजन पाचक होगा उतना ही अधिक शरीर उससे अधिक लाभ उठायेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर की जीवन-शक्ति खाये हुये भोजन के पाचन पर निर्भर है।

भोजन पचने में जितना भारी होगा उतना ही अधिक समय शरीर को उसके पचाने मे लगेगा। यदि हम भारी भोजन करें तो दूसरी बार भोजन करने के लिए हमें उस समय तक रुकना चाहिये जब तक पहिला भोजन हजम न हो जाय। किन्तु अभाग्य वश हम ऐसा नही करते क्योंकि हमारा स्वभाव इस प्रत्यक्ष अनाहार के प्रतिकूल है। हम लोग उपवास के महत्व को नहीं जानते। प्रकृति ने जो उपवास नियत किये हैं मनुष्य उनको भूल गया है। हमने प्रायः कहते सुना है कि सर्दी का सामना करने के लिए जाड़े में हमें अधिक भोजन करना चाहिये। यह सृष्टि के नियमों के बिलकुल विरुद्ध है। जाड़े के दिनों मे वास्तव में अधिक खाने से भारी हानि होती है। प्रकृति मे उपवास का नियम हर स्थान पर मिलता है। साँप एक बार जब भोजन कर लेते हैं तो हफ्तों नही खाते। हरिण और सियार कई सप्ताह तक भोजन नही करते और उन्हे न तो जाड़ा सताता है और न थकान मालूम होती है। यदि वे जीवधारी गरमी की तरह जाड़े मे भी भोजन करें तो बीमार पड़ जायँ और जाड़े को न सह सके। जाड़ा उफान को रोकता है और इसलिए पाचन-शक्ति को भी रोकता है। जितना भोजन गरमी मे पचता है उतना भोजन जाड़े मे नहीं पचता। हमारे घरेलू

जानवर दिन-रात तबेले में बँधे रहते हैं और उन्हें खाने को भी खूब दिया जाता है, इसलिए वे जाड़े की सर्दी नहीं सह सकते। जंगल मे घूमनेवाले जानवर जाड़े में तूफानों का भी मुकाबला करते है; क्योकि उनके शरीर में एक प्रकार की शारीरिक सहन-शक्ति उत्पन्न होती रहती है। शोक की बात तो यह है कि इस ओर लोगो का ध्यान कम जाता है।

इस कथन से यह बात स्पष्ट है कि रोग भोजन की अधिकता से उत्पन्न होता है। और इसलिए यह बात हमारे लिए विचारणीय है कि "हम क्या खायें, किस प्रकार खायें और कहाँ खाये।"

यदि हम उबाला हुआ जल पियें तो वह अरुचिकर मालूम होता है। दूसरी ओर यदि हम ताजा ठंढा पानी पीयें तो वह कैसा स्वादिष्ट मालूम होता है। कच्चा सेव भी कितना स्वादिष्ट मालूम होता है। यही बात वायु में भी है। बन्द कमरे की वायु से, जिसमे बहुत से आदमी बैठे हों, प्रायः सर घूमने लगता है और वे बाहर आकर अच्छी हवा में साँस लेने के लिए कितने उतावले होते रहते हैं। स्वच्छ हवा की तरह 'हम कहाँ भोजन करें' यह भी जानना जरूरी है। कमरे में बैठकर खाने की अपेक्षा खुली हवा मे खाने से भोजन जल्द पचता है, क्योंकि भोजन चबाते समय अच्छी हवा भोजन में काफी तादाद से मिल जाती है और उस हवा का पाचन-शक्ति पर भी अच्छा असर होता है।

जो भोजन अति पाचक होते है वे वास्तव में शरीर की पुष्टि के लिए अत्यन्त अनुकूल है। जहाँ भोजन सहज में पचता है वहाँ अधिक भोजन भी नही होता। अतएव इस बात की खोज करना अत्यन्त आवश्यक है कि कौन से भोजन जल्द पचते हैं अर्थात् कौन से भोजन से जीवन-शक्ति अधिक मिलती है। वास्तव मे यह प्रश्न जितना जटिल है उतना ही सीधा भी है।

ऐसे भोजन जो अपनी प्राकृतिक दशा में स्वादिष्ट होते हैं और जिनको खाने की हमारी इच्छा होती है वे भोजन हैं जो जल्द पचने वाले होते हैं और जिनसे अधिक जीवन-शक्ति मिलती है।

जो भोजन पकाये जाते हैं, जिन भोंजनों में हम मसाले डालते हैं या जिन भोजनों में सिरके और खटाई डाली जाती है, उन भोजनो में प्राकृतिक भोजनो की अपेक्षा कहीं कम जीवल-शक्ति होती है और वे जल्द पचते भी नहीं। पकाये हुए भोजनो में से भी वे भोजन जल्द हजम होते हैं, जो सादे ढङ्ग में पकाये और जिनमे मसाले बहुत कम डाते जाते हैं।

झोलदार पदार्थ जैसे शोरबा, शराब, कहवा आदि उन पदार्थों से देर में हजम होते हैं जो अपने असली रूप मे दृढ़ व चबाने के योग्य होते हैं। इसलिए लगातार झोलदार पदार्थों के सेवन करने से मेदा कमजोर हो जाता है और पाचन-शक्ति मारी जाती है।

वे भोजन जिनसे मनुष्य को घृणा उत्पन्न हो अथवा जिनसे मेदे में भारीपन मालूम हो, स्वास्थ्य के लिए हमेशा हानिकर हैं, चाहे वे कितना ही बढ़िया तरीके से क्यो न पकाये गये हों। भोजनो मे सब से दूषित भोजन माँस है। कोई आदमी पशु को चबा-चबाकर नही खाता या उस का कच्चा माँस नहीं खाता। मसाला लगाकर और स्वादिष्ट बनाकर उसी को हम खाते हैं और उसको अपने स्वभाव के अनुकूल बना लेते हैं, किन्तु वास्तव में इतनी मक्कारी करते हुए भी हम उसे स्वास्थ-कर किसी प्रकार भी नही बना सकते।

सब प्रकार के भोज्य पदार्थ पूर्ण पकने की अपेक्षा कम पकने की अवस्था में जल्द हजम होते है और अधिक शक्ति देते है। अभाग्यवश जनता समझती है कि कच्चे भोज्य पदार्थ

स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते है। क्योंकि उससे दस्त होते है और ऑव पड़ती है। उनका यह विचार भ्रमपूर्ण है। वास्तव में दस्त उनको होते है और आंव उनको पड़ती है जो मांस खाने के आदी हैं और एकाएक किसी दिन कच्चे फल या कच्चे सेव खा ले। कच्चे फल किस प्रकार जल्द हजम होते हैं उसका सबूत बड़ा आसान है। आमाशय मे पचनेवाले भोजन को उफान उठानेवाली क्रिया अति शीघ्र बदल देती है जो देरी से पचनेवाले भोजन में सम्भव नही है। यदि पचाने वाले यन्त्रों मे से पदार्थ मौजूद हैं जो जल्दी नहीं पचते या जो उफान की क्रिया से अपना स्वरूप नहीं बदलते, उनपर कच्चे फलों की उफान उत्पन्न करने वाली क्रिया का विशेष प्रभाव पड़ता है और वे भी उफान उठने की दशा में हो जाते हैं। इस प्रकार दस्त होने लगते हैं जिसको लोग अत्यन्त भयानक समझते हैं। इन दस्तो से कभी भी न डरना चाहिये। वे विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालकर शरीर को लाभ पहुँचाते हैं।

खिलाते-खिलाते जब कुत्तों की भूख मारी जाती है तो आपने देखा होगा कि वे घास नोच-नोचकर खाते हैं जो मांसाहारी पशुओं का खाद्य-पदार्थ नहीं है। कुत्ते को अपनी पशु-बुद्धि से ऐसा मालूम हो जाता है कि भोजन से भरे हुए मेरे मेदे को पचाने मे यह घास सहायता पहुँचा सकती है।

जिन लोगों को मेदे का रोग हो या जिन लोगो की पाचन-शक्ति खराब हो गयी हो उनको पके हुए फल की अपेक्षा कच्चे फल खाना चाहिये और जब तक मेदे मे पके फल को पचाने की शक्ति न आ जाय तब तक कच्चा फल ही खिलाते रहना चाहिये।

जो हाल फलों का है वही हाल दूसरे भोज्य पदार्थों का भी है। सब प्रकार के अन्न दाने के रूप में पचने मे बड़े हल्के होते हैं और उनमें प्राण-शक्ति भी अधिक होती है। दाँतो को

काम तो अधिक पड़ता है किन्तु अच्छी तरह चबाने से और अच्छी तरह थूक में उनके मिल जाने से वे जल्द पच जाते हैं। सौभाग्य से वे लोग अन्न खड़ा चबा सकते हैं जिनके दाँत मजबूत हैं। जिनके दाँत मजबूत नहीं हैं उन रोगियों को अन्न चबाना चाहिये। जो रोगी बिना छने आटे की रोटी नहीं पचा सकते उनको पहिले दला हुआ ही अन्न चबाने के लिए देना चाहिये। दले हुए कच्चे अन्न और फल में रोटी से अधिक गुण है। रोटियों में बिना छने हुए गेहूँ के आटे की रोटी सबसे अधिक गुणकारी है। प्राय: लोग चोकर छानकर रोटी बनाते है। ऐसी रोटी कठिनता से पचती है और कब्ज पैदा करती है। चोकर वस्तुत: पाचन में सहायता पहुँचाता है।

जई घोड़ों का उत्तम भोजन है। किन्तु उसकी उत्तमता उसी समय तक है जब वह ठीक ढंग पर तैयार करके घोड़ों को दी जाय। यदि जई में भूसी मिलाकर घोड़ों को खिलाया जाय तो वे उसे बड़ी आसानी से पचा लेंगे और उनका बल भी बढ़ेगा। यही भूसी न मिलावें और जई घोड़े को ऐसे ही खाने को दे तो हम प्रत्यक्ष देख सकते है कि घोड़े उसे जल्दी नहीं पचाते। यदि घोड़ों को ऐसी जई दी जाय जिसके छिलके निकाल लिये गये हों तो जई और भी कठिनता से घोड़ों को हजम हो सकेगा। वे मोटे होते जाते हैं, किन्तु उनकी पाचन-शक्ति खराब होती जाती है और वे काम करने के अयोग्य होते जाते हैं। जई के पचाने का रहस्य उसका छिलका है। जितना छिलका अधिक रहेगा उतना ही जई जल्द हजम होगी। सब अन्नों की अपेक्षा जई में सबसे अधिक भूसी रहती है, इसलिए वह घोड़ों के लिए गेहूँ से भी ज्यादा गुणकारी है।

जई का छिलका घोड़ों की लीद के साथ निकल जाता है। इससे यह न समझना चाहिए कि पाचन-शक्ति के लिए यह छिलका

निष्फल बोझ है। यह छिलका घोड़े के लिए भोजन पचाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जिस स्वरूप में जो भोज्यपदार्थ ईश्वर ने हमें दिये हैं वे उसी स्वरूप में सबसे जल्दी पचते हैं।

मनुष्य के लिए भी यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक है कि किस रूप में हम भोजन करते हैं। लोग प्राय कहते है "हम दाल नही पचा सकते क्योंकि उससे पेट में गड़बड़ी होने लगती है।" परन्तु इस कथन की सत्यता 'दाल किस प्रकार तैय्यार की गई है' इस पर निर्भर है। यदि दाल, रोटी या पूरी के साथ पतली खाई गई तो गड़बड़ी जरूर पैदा होगी क्योंकि दाल बिना दाँतों द्वारा चबाई हुई सीधे मेदे मे पहुँच जाती है और पचने के योग्य नहीं होती। दूसरी ओर यदि हम मटर को थोड़े पानी में उबाले तो वे सब पानी सोख लेंगे और मुँह से चबाने लायक हो जायँगे। ऐसी दशा मे हम चबाकर उन्हे मेदे मे डालेंगे और उससे गडबड़ी फिर नहीं पैदा हो सकती है।

एक मजदूर को मुट्ठी भर मटर पर ही रोज तीन महीने तक रहना पड़ा। वह घंटों मटरो को मुँह में चुभलाता और फिर उन्हें दाँतों से कुचल-कुचल कर मेदे में डालता था। उसका कहना है कि मैंने जीवन में ऐसे अच्छे स्वास्थ्य का कभी भी अनुभव नहीं किया। इससे मालूम होता है कि प्राकृतिक अवस्था में कोई भी खाद्य-पदार्थ कितना गुणकारी होता है। इस उदाहरण से यह भी सिद्ध होता है कि भोजन को शक्ति-दायक बनाने के लिए भी प्रकृति का नियम हमेशा तैयार रहता है।

अधिक भोजन पचाने के लिए मनुष्य को कितना भोजन करना चाहिए, यह बताना कठिन है। मुश्किल से दो आदमियों की पाचन-शक्ति एक प्रकार की होती है। अतएव दोनों के लिए भोजन की तौल या भोजन-प्रकार बतलाना कठिन है। प्रत्येक

को अपना भोजन अपनी प्रकृति के अनुसार निर्धारित कर लेना चाहिये।

' पाचन-क्रिया स्वयं एक प्रकार का उभाड़ शरीर के भीतर उत्पन्न करती है। उसके द्वारा भोजन शरीर के भीतर कई प्रकार के पदार्थों मे बदल जाता है। उन मे से शरीर को जितनी आवश्यकता होती है खीच लेता है। वे सब भोजन कठिनता से पचते है जिनके पाचन की योग्यता को हम बनावटी रीति से पकाकर या नमक और मीठा मिलाकर बदल देते है। उनके उभाड़ मे बुरा प्रभाव पड़ने के कारण उनको पचने की दशा में आने के लिए अधिक समय लगता है। यानी वे उदर भाग मे आवश्यक समय से अधिक देर तक पड़े रहते है। जिससे उभाड़ की दशा साधारण श्रेणी से बढ़ जाती है और इससे शरीर का तापमान भी बढ़ जाता है। इस प्रकार भीतर उत्पन्न हुई अधिक मात्रा की गरमी मे अँतड़ियों के भीतर मल मे अधिक कड़ापन आ जाता है और मल सूख जाता है।

पचने को क्रिया मुँह से शुरू हो जाती है। भोजन फिर मेदे मे पहुँचता है जहाँ मेदे का रस उससे खूब मिल जाता है और उस पर अपना पूरा प्रभाव डालता है। इस प्रकार भोजन अपने प्राकृतिक भागो मे अलग होता है, और उसमें बहुत परिवर्तन होता है। वह फिर आगे को बढ़ता है और अँतड़ियो में सड़न की क्रिया और भी अधिक बढ़ जाती है और उसमे पाचन को सहायता पहुँचाने वाले रस आकर मिल जाते है।

भोजन का जो भाग शरीर के लिए निरर्थक होता है वह अँतड़ियों, गुर्दों और त्वचा के द्वारा बाहर निकल जाता है। कभी-कभी हम देखते है कि थोड़े समय में बहुत से जानवर न पचनेवाली वस्तुयें जैसे हड्डियाँ, कंकड़ियाँ और खड़िया के टुकड़े पूर्ण रीति से पचा लेते है, ये चीजे मुर्गी के पेट मे बराबर देखने

में आती हैं। यदि ऐसे जीवो के मल की परीक्षा की जाती तो उसमें हमें कंकड़ियाँ या हड्डी के टुकडे नहीं मिलते। इसके विरुद्ध प्रायः हम देखते हैं कि आदमी के पाकस्थली मे भोजन एक सप्ताह तक पड़ा रहता है। इससे एक असाधारण सड़न उत्पन्न होती है। इस सड़न से जो वायु उत्पन्न होती है वह शरीर के लिए निरर्थक है। वह पसीने के द्वारा और गुदा द्वारा बाहर निकल जाती है। इस वायु को (पादने को) कभी नही रोकना चाहिए, क्योंकि उससे शरीर को हानि पहुँचती है।

यदि पाखाना भूरे रंग का बंधा हुआ हो और उस पर लसदार एक तह पाई जावे तो समझना चाहिए कि पाचन की दशा ठीक है। पाखाने को गुदा-द्वार मे लगना भी न चाहिए। जानवर जब मल त्यागते है तो उनके गुदा में नही लगता। यही हाल स्वस्थ मनुष्य का भी होना चाहिए। मनुष्य के शरीर मे मल निकलने का द्वार ऐसा सुन्दर बना हुआ है कि जब पाचन ठीक होता है तो उससे पाखाना बाहर बिना किसी भाग को गंदा किये हुये निकला जाता है। आबदस्त लेने की आवश्यकता नही पड़ती। अच्छे पचे हुये पाखाने मे बदबू भी नही निकलती।

यदि पाखाने में बदबू निकले तो समझना चाहिये कि पाचन के खमीर में कोई असाधारण दशा पैदा हो गई है, इससे कब्ज होता है। शुष्क आँतो मे मल के टुकड़े जम जाते हैं और निकाले नहीं निकलते। सड़न का काम तब भी जारी रहता है और धीरे-धीरे मल के कई टुकड़े हो जाते है और वायु अधिक तादाद में निकलकर सारे शरीर मे फैल जाती है। पाचन-क्रिया से उत्पन्न भीतरी तनाव शरीर के आखिरी सिरों और त्वचा की ओर जाता है। यदि त्वचा अपना काम न करे और वायु बाहर न निकले तो वह त्वचा के नीचे जमा होती चली जाती है।

त्वचा की दशा अब और भी अधिक खराब हो जाती है,

वह अपना काम और भी सुस्ती से करती है और उसकी गर्मी कम हो जाती है। महीन रगें विजातीय-द्रव्य से इस कदर भर जाती हैं कि अच्छा खून त्वचा तक नहीं पहुँचता। इसलिए शरीर के बाहर की गर्मी कम हो जाती है और त्वचा का रङ्ग मुर्दों की तरह पीला पड़ जाता है। यदि खून में मूत्र के तत्व अधिक हों तो त्वचा का रङ्ग लाल होता है नहीं तो और दशाओं में पीला, मटमैला या हरा। बाहर की सर्दी भीतरी गर्मी की अपेक्षा वायु-स्वरूप विजातीय-द्रव्य को और भी कड़ाकर देती है। बाहर की सर्दी और भीतर के दबाव से विजातीय-द्रव्य शरीर स्थल में भर जाता है इससे शरीर मे रूपांतर होता जाता है और हम उसे विजातीय-द्रव्य का भार कहते है। इसी विजातीय-द्रव्य से आँखो मे, कानो में, दिमाग में और सर में बीमारी पैदा होती है। इस रोग के कारण को समझकर हम दावे के साथ कह सकते है कि जो लोग एक ही स्थान में दवा लगाकर उसे अच्छा करना चाहते हैं वे कितने भ्रम में पड़े हुए हैं, और बीमारी के असली तत्व को नही जानते।

साधारण पुरुषों की धारणा शुद्ध पाचन-शक्ति के विषय में क्या है, यह वास्तव में एक विचारणीय विषय है। लोग प्रायः कहते है, "मेरी पाचन-शक्ति बहुत बढ़िया है, मैं दो सेर बरफी और तीन सेर पेड़ा खा सकता हूँ, चार बोतल शराब पी जाता हूँ और बदहज्मी नाम को भी नहीं होती।" यदि इस कथन को ठीक मान लें तो भी इन भोजनों से उतना ही नुकसान है जितना एक दिन में १० सिगार पीने से। तम्बाकू शरीर के लिए विष है और विष रहेगी। यदि शरीर का विष निकालना पड़ा तो कष्ट होगा ही। यही हाल खाने-पीने का भी है। पूर्ण स्वस्थ मेदा प्रतिकूल भोजन के एक कण को भी रखना पसन्द न करेगा। खट्टी डकार, छाती की जलन और बेचैनी द्वारा वह

बतला देता है कि मुझ से अधिक काम लिया गया है। शक्ति-हीन मेदा प्रकट रूप में सब भोजनों को स्वीकार कर लेता है अर्थात् प्रतिकूल और अधिक भोजन को रोकने की उसमें शक्ति नहीं रहती। कहने का तात्पर्य यह है कि मेदे की स्वाभाविक क्रिया नष्ट हो जाती है। भोजन बिना पूर्णरूप से पचे बाहर निकल जाता है और उनके शरीर को उससे लाभ नहीं पहुंचता।

भोज्य-पदार्थों में बल पहुँचाने की योग्यता का प्रमाण मेदे की पाचन-शक्ति पर निर्भर है। हरएक पदार्थ में बल पहुँचाने की कितनी शक्ति है, यह दूसरा विषय है। मोटे आटे की रोटी, ताजे फल, सब प्रकार की तरकारियाँ, बिना नमक या चीनी की सादी रीति से पकाया हुआ भोजन शरीर के लिए सब उत्तम शराब, कीमती मांस या अंडो से कहीं अच्छा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शराब, मांस आदि में शरीर में मिलने वाले सब रसायनिक पदार्थ मौजूद हैं किन्तु इसका कोई सबूत नहीं है कि वे शरीर के लिए गुणकारी और बल-बर्द्धक हैं। शरीर अत्यन्त साधारण भोज्य-पदार्थों से भी जैसे अन्न के वह सब भाग जो विज्ञान से शरीर के लिए आवश्यक हैं, निकाल सकता है। जिस अन्न की रोटी बनती है यदि वह खूब चबाया जाय तो मेदे में जाते ही खट्टी हो जाती है। पाचन-क्रिया के प्रभाव से उस का रूपान्तर हो जाता है जिससे शरीर को पोषण मिलता है। ये सब शरीर मे जज्ब हो जाते हैं। जो हिस्से नहीं पचते एक नियत रूप और रंग के बनकर बाहर निकल जाते हैं।

डाक्टरो की संख्या प्रतिदिन बढ़ रही है और उनके बढ़ने के साथ-साथ रोग भी बढ़ते जा रहे हैं। जल-चिकित्सा के सिद्धान्तों को समझें या न समझें किन्तु इतना तो मानना

अवश्य पड़ेगा कि डाक्टरों से रोगों के हटाने में सन्तोष-जनक सहायता नहीं मिल रही है। जनता एक यंत्र रखती है और उसी से प्राचीन ढंग से चलने वाले चिकित्सालयों के परिणामों को नापती है। न मालूम कितने पुरुष डाक्टरों के चक्कर में पड़कर अपना सर्वनाश कर बैठे हैं और न मालूम कितने पुरुषो ने डाक्टरो की सम्मति में पड़कर प्रकृति के नियमो को तोड़ा है और उसका उन्हें फल भी भोगना पड़ा है। वे अन्त मे रोग के चंगुल में फँसे हैं।

एक बार हानोलूलू के एक उत्साही पादरी ने कुने महोदय को लिखा था, "यूरोप निवासियो के आने के पहिले यहाँ के आदि निवासी पोई पर (जातीय भोजन) निर्वाह करते थे और साथ में केले आदि फल भी खाते थे, पानी में केवल शुद्ध जल का व्यवहार करते थे। वे इस प्रकार स्वाभाविक भोजन करते थे। उस समय उनके डीलडौल बड़े होते थे और उनके शरीर में ताकत भी खूब होती थी। जब यूरोप के निवासी आये तो उन्होंने उनसे कहना शुरू किया कि केवल मांस और मदिरा से ताकत मिल सकती है। अब तो वहाँ मांस के लिए पशु भेजे जाने लगे और शराब भी दूसरे देशो से आने लगी। १८ मई सन् १८१६ ई० में हवाई के एक सरदार ने पहिले-पहिल अपना खाना-पीना बदला था। सुअर का मांस अब उनका जातीय भोजन हो गया है और 'जिन मदिरा' जातीय पेय-पदार्थ। इसका परिणाम यह हुआ है कि वे बहुधा फोड़े-फुन्सी आदि त्वचा के रोगो में या दमे के रोग मे फँसे रहते है। गर्मी, सुजाक आदि की बीमारी भी उनमे बहुत मिलती है और बहुतों को कोढ़ हो जाता है।" इससे सिद्ध होता है कि नवीन सभ्यता से भोजन में परिवर्तन करने के कारण हवाई निवासी नाना प्रकार के रोगो मे फँस

गये। इससे यह भी सिद्ध होता है जो भोजन डाक्टर बतलाया करते हैं, वे शरीर के लिए उपयोगी नही हैं।

हम भोजन शरीर के भीतर दो इन्द्रियों द्वारा ले जाते हैं; फेफडे और मेदा। इसमें से हरएक के द्वार पर एक सन्तरी पहरा देता है, अर्थात् फेफडों के वास्ते नाक और मेदे के लिए रसना, दोनों द्वारपाल कमजोर हैं। इसमें कोई शंका नहीं कि पर्वत की शुद्ध वायु हमारे फेफड़ो का सर्वोत्तम आहार है और ऐसी हवा मे साँस लेने से हमे पूर्ण रूप से सन्तोष होता है। जिसको स्वच्छ हवा मे रहने का अभ्यास है वह कई घंटे तक कोठरी मे नहीं रह सकता। उसकी नाक बतलाती रहती है कि देखो इस कमरे मे बैठने से तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। किन्तु यदि वह रोज बैठता रहे तो वही गन्दी हवा उसके लिए सुखकारी होने लगती है। नाक भी फिर नहीं कुछ कहती सुनती। इस प्रकार उसकी घ्राण-शक्ति बिगड़ जाती है और उसे चंगा करने के लिए फिर अधिक समय लगता है। हम प्रति मिनट में १६ से २० बार साँस लेते हैं। विजातीय-द्रव्य के शरीर में मिलने के परिणाम शीघ्र प्रकट होने लगते है और यही कारण है कि हमारी बुद्धि उस समय हमे मार्ग दिखलाती है जब घ्राण शक्ति जवाब दे देती है।

रसना की हालत नाक से भी गई बीती है। बाल्यावस्था से वह बिगड़ जाती है और उस पर हम भरोसा नही कर सकते। वास्तव में यह बात प्रसिद्ध है कि हमारे आचरणों के अनुसार किस प्रकार रसनेन्द्रि मे परिवर्तन हो सकता है। तथापि इस बात को अत्यन्त आवश्यकता है कि शरीर को शुद्ध व अनुकूल भोजन मिले। सब प्रकार के प्रतिकूल (Unnatural) भोजनों में वे सब पदार्थ मौजूद रहते हैं जिनसे शरीर को हानि पहुँ-

चती है और उनसे अन्त मे रोग उत्पन्न होते हैं। अब प्रश्न यह होता है, कि कौन सा भोजन प्राकृतिक है।

यह प्रश्न वास्तव मे वैज्ञानिक है। उसके उत्तर के लिए हमें (Inductive Method) (परीक्षा का मार्ग) काम में लाना पड़ेगा जिससे खास-खास उदाहरणों से व्यापक परिणाम निकाला जाता है। इस परीक्षा के हम तीन भाग कर सकते है।

(१) अनुभवो को इकट्ठा करें।

(२) उनके परिणाम निकाले।

(३) और परीक्षा करें।

अनुभव का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, और इसलिए प्रत्येक बात का अनुभव करना कठिन है इसलिए जिस प्रकार मनुष्य थोड़े ही भ्रमण से किसी देश के फल और फूलों के गुणो को जान लेता है, उसी प्रकार हम भी थोड़े से अनुभव से अपना मतलब सिद्ध कर लेंगे।

सृष्टि में दृष्टिपात करने से यह बात भलीभांति विदित हो जाती है कि शरीर के काम को जारी रखने के लिए भोजन की आवश्यकता है। यद्यपि भोजन के चुनाव मे पूरी स्वतन्त्रता नही है। जो वृक्ष समुद्र के किनारे हरा भरा रहता है वह जब देश के अन्दर लाया जाता है तो सूख जाता है। जो पेड़ बालूदार जमीन मे पैदा होता है वह बाग मे सूख जाता।

यही बात सब जीवों में पाई जाती है। अन्तर इतना है कि भोजन के अनुसार हम उनको श्रेणियो में बाँध सकते हैं। इस विचार से उनके दो भेद है। (१) मांस भोजी (२) और शाक भोजी, इनमे भी कई भेद हो सकते है। मांसाहारियो मे मांस खानेवाले और दूसरे कोड़े खानेवाले। उसी प्रकार शाकाहारियो में घास पात खानेवाले और फल व मेवा खानेवाले। इसके अलावा कुछ ऐसे भी जानवर है जो मांसाहारी और शाकाहारी दोनों है।

हमारा अन्वेषण प्रत्येक प्रकार के जीवो के उन अवयवों में भी होना चाहिये जिनसे शरीर को भोजन के रस लेने में सहायता मिलती है। किसी जीव के अवयव या हड्डियों के ढॉचो से हम पता लगा सकते हैं कि वह मांसाहारी है या शाकाहारी। हम उनके दॉतो का पाकस्थली को भोजन तक पहुँचानेवाले उनकी इन्द्रियो का और उनके अपने बच्चो के सेवन विधि का निरीक्षण करेंगे।

दॉत तीन प्रकार के होते हैं,'अर्थात् कुतरने के दॉत (Incisors) कीले या कुत्ते के दॉत (Canine), और दाढ़ यानी पीसनेवाले दॉत (Molars)। मांसाहारी जानवरो के कुतरने वाले दॉत छोटे-छोटे होते हैं और उनके कीले बहुत बड़े-बड़े होते है। वे और दॉतो से कहीं आगे निकले होते है और सामने की कतार मे उनके चपककर बैठने का स्थान भी होता है। वे नोकीले, चिकने और कुछ तिरछे होते है। वे चबाने के योग्य नहीं होते किन्तु वे शिकार को पकड़ने और थामने के काम के होते है। भयानक मांसाहारी जीवों में इनको फैंग्स (Fangs) कहते हैं। पास के दॉत मॉस को छोटे-छोटे टुकड़ो के काटने के काम मे आते हैं और उनकी सतह नोकीली होती है। ये नोक मिलते नहीं बल्कि पास-पास चपककर बैठ जाते हैं और चबाने की क्रिया मे वे मास के पट्ठों के रेशो को सर्वदा अलग-अलग कर देते हैं। अब जबड़ो को लीजिये। यदि वे हिलाये जायॅ तो रुकावट पड़ती है। मांसाहारी जीव इस प्रकार भोजन को चबा नही सकते। इससे स्पष्ट है कि इस श्रेणी के जानवर भोजन को दॉतो से पीस नहीं सकते। यह बात हम कुत्तो मे भलीभॉति देख सकते हैं। कुत्ते रोटी के टुकड़े को चबा नहीं सकते और इसी कारण वे बिना चबाई हुई रोटी निगल जाते है।

शाकाहारी जानवरो मे काटनेवाले दॉतो की प्रधानता होती है और उनसे शाक-पात अच्छी तरह कुतरे जा सकते हैं।

इनके कीले प्रायः छोटे होते हैं। दाढ़ ऊपर चौड़ी होती हैं और उनके अलग बगल रोगन-सा लिपटा हुआ होता है। शाक-पात के भोजन को चबाने में वे अच्छी तरह काम में लाये जा सकते हैं

पशुओं में फलाहारी बहुत नहीं हैं। हमारी खोज के लिए वे बंदर अत्यन्त आवश्यक है जो हमसे मिलते-जुलते हैं। फलाहारी जानवरों में सब दाँत समान रूप से बढ़े होते है। सबकी ऊँचाई एक-सी होती है केवल कीले और दाँतों से कुछ अधिक निकले होते है। वे इतने नहीं निकले होते कि मांसाहारी जानवरों की तरह काम कर सके। वे गावदुम और सिरे पर गोठिल होते हैं। वे चिकने नही होते और इस वास्ते शिकार को पकड़ने और थामने का काम नहीं कर सकते। इन जानवरों को दाढ़ों मे चिकनाई होती है और चूँकि उनके नीचे जबड़ा इधर-उधर खूब चल सकता है, इसलिए उनके दाँत चक्की के पाट की तरह पीसने का काम कर सकते हैं। एक दाढ़ भी नोकीली नहीं होती यह इस बात का प्रमाण है कि वे मांसाहारी नहीं हैं। जो पशु दोनों प्रकार के भोजन करते हैं यानी मांसाहारी और शाकाहारी हैं उनके कुछ दाढ़ नोकीले और कुछ चपटे होते हैं। भालू इसका एक उदाहरण है। रीछों के मांसाहारी पशुओं की तरह कीलें होते हैं जिनके बिना वे शिकार नहीं पकड़ सकते। उनके कुतरने वाले दाँत फलाहारी जीवों के सदृश होते हैं।

सवाल यह है कि इन दाँतों मे से किसके दाँत आदमी के दाँतो से मिलते हैं। इसमें कोई शंका नही कि मनुष्य के दाँत फलाहारी पशुओं के दाँतों की तरह बने होते हैं। मनुष्यो के कीले इतने लम्बे नहीं होते जितने कि फलाहारी जीवो के और दूसरे दाँतों के आगे नहीं निकले रहते। मांस के पक्षपाती बहुधा कहा करते हैं कि कीलों का रहना ही यह सिद्ध करता है कि मनुष्य मांसाहारी है। यदि मनुष्य के कीले वही काम कर

सकते जो मांसाहारी जानवरो के करते है या रीछो के सदृश थोड़े से पीछे के दाँत माँस काटने के वास्ते होते तो उनका कथन सत्य हो सकता था। इन सब बातो का सार यह है:—

(१) मनुष्य के दाँत मांसाहारी पशुओ से नही मिलते इसलिए वह मांसाहारी नहीं है।

(२) मनुष्य के दाँत शाक व घास खानेवाले जानवरो से नही मिलते इसलिए वह घास शाक खाने वाला जानवर नहीं है।

(३) मनुष्य के दाँत उन पशुओ की तरह नहीं हैं जो सब प्रकार के भोजन माँस, मेवा, शाक आदि खाते है इसलिए मनुष्य सब प्रकार के भोजन करने वाला जीव नहीं है।

(४) मनुष्य के दाँत फल खानेवाले उन बन्दरो से मिलते है जो मनुष्य के सदृश है इसलिए यह अधिक सम्भव है कि मनुष्य फल-भक्षी प्राणी है।

माँस के पक्षवाले उपरोक्त सिद्धान्त का खण्डन इस प्रकार करते हैं दाँतो की परीक्षा से मनुष्य न माँसाहारी है और न शाकाहारी। वह दोनो के बीच का प्राणी है यानी वह माँस और फल दोनों खाने के लिए है। यह निर्णय तर्कशास्त्र के बिल्कुल विरुद्ध है। मध्य दशा का विचार वहाँ नहीं चल सकता, जहाँ वैज्ञानिक सबूत की आवश्यकता है। केवल गणित मे ही मध्य की दशा ठीक समझ मे आती है।

अब हम लोग जरा पशुओं के आमाशय की ओर विचार करें। मांस खानेवाले पशुओ का आमाशय (मेदा) छोटा और गोला होता है और आँते शरीर से तिगुनी या पाँचगुनी लम्बी होती हैं, शाक-पात खानेवाले, विशेषकर जुगाली करनेवाला, पशुओं का पेट बड़ा और विधिपूर्वक बना होता है और उनकी अँतड़ियाँ शरीर से २० या २८ गुना लम्बी होती है। फलखाने वाले पशुओं की आतें शरीर से १० या १२ गुना लम्बी होती है।

देह की चीड़-फाड़ की पुस्तको में प्रायः कहा गया है कि मनुष्य की अँतड़ियों की लम्बाई उसके शरीर से तीन या पाँच गुना लम्बी है और इसीलिए वे माँस खाने के लिये अनुकूल है। ऐसा कहना मानो प्रकृति को विरोधी ठहराना है। दाँतों के विचार से तो मांसाहारी पुरुषों के अनुसार मनुष्य को प्रकृति ने सर्वभक्षी बनाया और आँतों के विचार से मांसाहारी, प्रकृति के काम मे इस प्रकार की दो बातें नही हो सकतीं। उपरोक्त उदाहरण मे मनुष्य की लम्बाई सर से तलुवे तक ली गई है और वास्तव मे अन्य दशाओ की तरह परीक्षा करने के लिए नाप केवल मुख से रीढ़ को हड्डी तक होनी चाहिए। मनुष्य की आँतों का लम्बाई १६ से २८ फोट तक उसके देह की लम्बाई के अनुसार हुआ करती है और देह की लम्बाई सिर से रीढ़ की अंतिम सीमा तक १॥ फीट से २॥ फीट तक है। इसका भाग देने से १० या ११ भजनफल होता है। अतः इस दूसरी बार इस निर्णय तक पहुँचते है कि मनुष्य फलाहारी है।

अब तीसरी परीक्षा की ओर आइये। इस विषय मे हम अपनी इन्द्रियों से पूछें। नाक और रसना से ही प्रेरित होकर जानवर अपना भोजन खोजते है और खाते है, मांसाहारी पशु को जब अपने शिकार की महक मिलती है' तो उसकी आँखें चमकने लगती हैं और वह बडे चाव से उस गन्ध की ओर जाता है। वह अपने शिकार पर झपटता है और गरम-गरम खून पीता है। ऐसा करने मे उसे बड़ा आनन्द होता है। शाक खानेवाला पशु इसके विरुद्ध अपने साथी पशुओं के पास जाता है और झपटने के लिए उसका जो नही चाहता। उसकी घ्राण इन्द्रियाँ मांस खाने के लिए उसको कभी प्रोत्साहित नही करतीं। यदि उसके स्वाभाविक भोजन मे खून पड़ा हो तो वह उसे भी छोड़ देता है। उसकी आँखें और उसकी घ्राणेन्द्रिय उसे घास-

पात की ओर ले जाती है और उसीसे उसकी तृप्ति होती है। फलाहारी जानवरों मे भी यही बात देखने मे आती है। उनकी इन्द्रियाँ उन्हे फल खाने के लिए पेड़ों पर ले जाती है।

परन्तु मनुष्य की इन्द्रियाँ किस प्रकार काम करती है। क्या उसकी आँखे और उसकी घ्राणेन्द्रिय उस बकरे को मारने के लिए प्रोत्साहित करती है। जिस बच्चे ने मांस खाया हो और किसी पशु को न मारा हो तो क्या किसी मोटे बकरे को देखकर यह कहेगा कि अरे यह बकरा मेरे लिए अच्छा भोजन होगा। जब हम उस जानदार पशु का और पकाये हुये मांस का विचार करते है तब ही केवल ऐसे विचार उत्पन्न हो सकते है। प्रकृति की ओर से हमे ऐसे विचार नही मिलते।

बध करने का विचार ही हमारी इन्द्रियों को घृणित मालूम होता है और कच्चा मांस न तो आँख को सोहाता है और न नाक को। कसाई-घर हमारे शहरो से दूर क्यो बनवाये जाते हैं? अनेक नगरो मे इस बात के लिए कानून क्यो बनाये जाते हैं कि खुला हुआ मांस सड़कों से न गुजरे। ऐसा होते हुए क्या आप मांस को प्राकृतिक:भोजन कह सकते है। नाक और जिह्वा को अच्छा लगे इसके लिए मांस में नाना प्रकार के मसाले डाले जाते हैं। अभ्यास से नाक और जिह्वा मुर्दा हो जाती हैं और हम गपागप मांस खाने लगते है। दूसरी ओर जरा देखिये। फलों की महक हमको कितनी बढ़िया मालूम होती है। फलों की प्रदर्शनी देखकर पत्रों के संवाददाता लिखा करते हैं कि 'फलों के देखने ही से मुँह में पानी भर आता है।' ऐसा होना कोई आकस्मिक घटना नहीं है। सब प्रकार के अन्न भी फल से उतर कर अच्छी महक निकालते है और कच्ची दशा मे भी खाने मे बड़े स्वादिष्ट होते है। अन्न के पकाने मे किसी प्रकार की घृणा नहीं मालूम होती। अन्न का उत्पन्न

करनेवाला खेतिहर इसी वास्ते सन्तुष्ट और सुखी कहा गया है। इस तीसरी अवस्था से भी मनुष्य स्वभावतः फलाहारी निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

अब हम चौथी अवस्था को लेते है। सन्तानोत्पत्ति के लिए जो सृष्टि के नियम है, जब हम उनकी ओर देखते है तो हमे और भी अधिक कठिनता का सामना करना पड़ता है। जन्म लेते ही सब जानवरों को ऐसा भोजन मिलता है जो उनकी वृद्धि मे सहायक होता है। नवजात शिशु के लिए माँ का दूध ही प्राकृतिक भोजन है, किन्तु बहुत-सी माताएँ अपने इस कर्तव्य का पालन करने मे असमर्थ होती हैं, क्योंकि उनकी शारीरिक दशा दूध उत्पन्न करने के योग्य नहीं होती। यह देश का दुर्भाग्य हैं क्योंकि ऐसे बच्चो की इन्द्रियाँ प्रारम्भ से ही इतनी मजबूत नही होती कि वे प्रत्येक इन्द्रियो के कार्य को पूर्ण रूप से ग्रहण कर सके। कोई भी अप्राकृतिक भोजन प्राकृतिक भोजन का मुकाबला नही कर सकता। निरीक्षण से देखने में आता है कि अच्छे घरों की स्त्रियों के दूध मांस खाने के कारण नहीं होता इसलिए वे अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिए दाइयों को ऐसे स्थान से बुलवाती है जहाँ मांस बहुत कम खाया जाता है। ये दाइयाँ भी समय पाकर मांस खाने लगती है और कुछ वर्षों में दूध पिलाने मे वे भी अयोग्य हो जाती हैं। सामुद्रिक यात्रा में आटे की बनाई हुई लप्सी दूध पिलानेवाली स्त्रियों को दी जाती है, ताकि उनके स्तन का दूध न सूखे। इससे सिद्ध होता है कि मांस के भोजन से माँ के स्तन मे दूध उत्पन्न होने में कुछ भी सहायता नही मिलती। अत चौथी बार यह परिणाम निकलता है कि मनुष्य स्वभावतः फलाहारी प्राणी है।

यदि उपरोक्त दलीलें ठीक हैं तो यह मानना पड़ेगा कि

मनुष्य जाति का एक बहुत बड़ा भाग प्राकृतिक भोजन से न्यूनाधिक अलग हो गया है। प्रकृति की सन्तान अपने प्राकृतिक भोजन से अलग हो गयी है, इसके सुनने से बड़ा आश्चर्य मालूम होता है और इसके लिए अभी और सबूत की आवश्यकता प्रतीत होती है। क्या यह सम्भव है कि बचे-बचाये प्राणी भी अपने स्वाभाविक भोजन को छोड़ सकते हैं? यदि वे छोड़ दे तो इसका क्या परिणाम होगा।

हम सब लोग भलीभाँति जानते हैं कि कुत्तो और बिल्लियों को शाक-पात के भोजन का अभ्यास डाला जा सकता है। किन्तु कभी क्या हमने ऐसा भी देखा है कि शाकाहार खाने वाले पशु मांसाहारी बन गये हों। किसी घर मे एक पालतू हिरन था, उसकी दोस्ती उसी घर के एक कुत्तो से हो गई थी। वह प्रायः कुत्ते को मांस का शोरबा पीते देखता था। धीरे-धीरे उसने भी पीने का प्रयत्न किया। पहिले तो शोरबे को मुँह में लगाते हुए वह अपना मुँह अलग कर लेता था किन्तु धीरे-धीरे उसका अभ्यास पड़ गया और वह उसे स्वाद से पीने लगा। कुछ सप्ताहों मे वह जिस मांस से घृणा करता था उसे भी खाने लगा। परिणाम इसका यह हुआ कि हिरन बीमार पड़ गया और एक वर्ष का भी वह मुश्किल से हो पाया था कि मर गया। वह हिरण घर में बँधा नहीं रहता था बल्कि बाग मे इधर-उधर घूमता था।

फल खानेवाले बन्दरों को बाँधकर जबरदस्ती मांस खिलाया जा सकता है, किन्तु ऐसा करने से क्षयी रोग से पीड़ित होकर वे एक या दो वर्ष के भीतर मर जाया करते है। इस मृत्यु का कारण केवल अस्वाभाविक भोजन है। जो परीक्षायें हाल में की गई है, उनसे भी इस विचार की पुष्टि होती है। मनुष्य ज्यो-ज्यो प्राकृतिक भोजनो से अलग होते

जायँगे त्यों-त्यों बीमारियाँ और भी अधिक बढ़ती जायँगी।

कितने मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें कभी भी जीवन में वैद्य या डाक्टर बुलाने की आवश्यकता न पड़ी हो। ऐसे पुरुष बहुत ही कम मिलेंगे। कितने पुरुष ऐसे होंगे जो वृद्ध होकर मरते हों। बहुत ही कम। तादाद इतनी कम हो गई है कि समाचार पत्रों को प्राय: लिखना पड़ता है कि अमुक मनुष्य वृद्ध अवस्था में मरा। ऐसे बहुत कम आदमी मिलेंगे जो विजातीय-द्रव्य से थोड़ा बहुत लदे न हों। ग्रामीण भाई, यद्यपि वे प्रकृति के साथ बिल्कुल नहीं रहते, तथापि अधिक स्वस्थ होते हैं। स्वस्थ होने के लिए यद्यपि स्वच्छ हवा की अत्यन्त आवश्यकता है, तथापि भोजन का महत्व कुछ कम नहीं है। तबेले में रहने वाले पशुओं की हालत सफाई की दृष्टि से बड़ी खराब होती है। अपने मल से निकली हुई हवा में वे साँस लेते हैं और बँधे रहने के कारण चल फिर नहीं सकते। वे अन्त में बीमार हो जाते हैं और बीमार भी नहीं होते तो सदैव अस्वस्थ रहते हैं सफाई की इतनी हालत खराब होते हुये भी उनमें इतनी बीमारियाँ नहीं मिलतीं जितनी मनुष्यों में, जो पशुओं से अपनी रक्षा कहीं अधिक कर सकते हैं। इसका दोष खास कर भोजन पर है।

अब हम अन्तिम बात पर आते हैं और अपने परिणामों के सत्यासत्य की परीक्षा प्रयोग द्वारा करना चाहते हैं। दो प्रश्न प्राय: उठाये जाते हैं जिनकी जाँच करनी चाहिए। पहिला यह है कि शरीर के उच्च बनावट के कारण मनुष्य उन नियमों के आधीन नहीं है जो नीची श्रेणीवाले पशुओं के लिए हैं। दूसरा प्रश्न यह है कि बहुत दिनों से मांसाहार करने के कारण मनुष्य ने मांसाहार से अनुकूलता प्राप्त की है। दूसरे के दो भाग और है, प्रथम यह कि मनुष्य-जाति इस भोजन से प्रभा-

वित हो गई है और दूसरे यह कि नवयुवक इस मांसाहार को बिना शरीर को हानि पहुँचाये नहीं छोड़ सकते।

बहुत से घरानों मे बिना मांस के बच्चों का पालन हुआ है। ऐसा होने से उन्होने शारीरिक और मानसिक बहुत काफी उन्नति की है। वे सदाचारी और साहसी भी अधिक मात्रा मे देखने मे आये है। बच्चो के पालने के सम्बन्ध मे सदाचार की अत्यन्त आवश्यकता है। आजकल हर समुदाय में सदाचार की काफी चर्चा होती है। सदाचार का घोर शत्रु कौन है? धार्मिक गुरुओ और पाधा-पुरोहितों से पूछिए। वे यही कहते है कि सदाचार के घोर शत्रु कामचेष्टाये है। अप्राकृतिक दवाओं द्वारा इन चेष्टाओं को दमन करने के लिए असाधारण कष्ट उठाये जाते है, पुरुखो से उपवास करवाये जाते हैं। एक स्थान मे लोग बॉधकर रक्खे जाते है, किसी से मिलने नहीं पाते किन्तु सदाचार पर इनका बहुत कम असर पड़ता है। काम-चेष्टाये शुरू से ही न उठने पावे तो सदाचार आप से आप अच्छा होगा। काम-चेष्टाओं के न उठने देने का मुख्य कारण यह है कि बच्चो को शुरू से अनुत्तेजक और प्राकृतिक-पदार्थ खाने को दिये जायँ। इन बातो की सत्यता परीक्षाओं से सिद्ध हो चुकी है। इसपर जितना कहा जाय, थोड़ा है।

काम चेष्टाओं से मुक्त होना और मानसिक शक्ति का प्राप्त करना इन दो बातो से मन की शिक्षा बहुत अच्छी होती है। प्रत्येक आत्मज्ञानी को मालूम है कि सन्तोष या शान्ति अपने विचारो और विवेक के लिये सब से अधिक लाभकारी है और शान्ति केवल शाकाहार ही से मिल सकती है, दूसरे किसी उपाय से नहीं।

अभी उन प्रयोगो पर विचार करना बाकी है जो नवयुवकों पर किये गये है। हम और हमारे साथी उसी पथ के अनुगामी

हैं और जो लाभ हमको हुए हैं वह हम वर्णन नहीं कर सकते। इस समय जो बहुत से फलाहारी हैं, वे किसी समय भयानक रोग से आक्रान्त हुए थे और अच्छा होने पर उन्होंने जन्म भर शाकाहारी होने का प्रण लिया है। ऐसा करने से वे स्वयं कहते है कि पहले से जब हम मॉस खाया करते थे इस समय हमारे स्वास्थ्य कहीं अच्छे हैं। वे बहुत मोटे तो नहीं हुये लेकिन स्वस्थ जरूर हो गये है। थियोडोर हान साहब (Theodor Hahn) २६ वर्ष की अवस्था में इतने बीमार पड़े कि डाक्टरो ने कहा कि इनका बचना असंभव है। प्राकृतिक भोजन से उनका स्वास्थ्य साधारणतया अच्छा हो गया और वे तीस वर्ष तक और जीवित रहे।

जल-चिकित्सा ने जिसमे बिना औषधि और बिना चीड़फाड़ के चिकित्सा होती है, सिद्ध कर दिया है कि अनुत्तेजक-स्वाभाविक भोजन से कोई भी रोग दूर किये जा सकते हैं। जो मांस और शराब नहीं छोड़ सकते उनका अच्छा होना कठिन है, क्योंकि वे शरीर मे अपने खान पान से नित्यप्रति विजातीय-द्रव्य भरते जाते हैं। जिसका बाहर निकालना अत्यन्त आवश्यक है। अतः रोग उत्पन्न होने की जड़ कभी नही जाती।

जो लोग भले चंगे हैं वे इस फालतू बोझ को टॉगे रह सकते हैं किन्तु इससे उनको हानि है। जिसको स्वस्थ रहना है उसे शरीर से अपने विजातीय-द्रव्य को निकालना पड़ेगा और शाकाहार द्वारा शारीरिक शक्ति प्राप्त करना होगा।

अब प्रश्न यह है कि हम क्या खायें और क्या पियें? शराब के विषय मे एक बार हम अपने ख्याल को फिर दौड़ावें। सिवाय मनुष्य के कोई भी पशु पानी के अलावा और किसी पेय पदार्थ से अपनी प्यास नही बुझाता। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जानवर गड्ढों या तालाबो की अपेक्षा सदैव बहते हुये नाले या बहती हुई नदियो मे पानी पीना अधिक पसन्द

करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस बहते हुए पानी में सूर्य की किरणें पड़ती हैं और जो पत्थरो व चट्टानों में होकर बहता हो वह सबसे श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त जो पशु रसदार भोजन करते हैं वे पानी कम पीते है और यदि रसदार फलों का सेवन मनुष्य भी भोजन के साथ करे तो उसे भी प्यास कम लगे। किन्तु यदि उसे प्यास लगती है तो शुद्ध पानी ही उसका पेय पदार्थ है। फलो के शरबत मे खूब चीनी डालकर पीना भी अच्छा नहीं है। यदि हम बीमारियों से दूर रहना चाहते हैं तो प्रकृति देवी के दिए हुए केवल जल का ही इस्तेमाल करें।

हमें क्या खाना चाहिये ?

प्रकृति फलों की ओर इशारा करती है और इसलिए फलाहार सर्वोत्तम है। सब प्रकार के अन्न, सब प्रकार के फल व मेवे, सब प्रकार के कन्द मूल, जो आँखों को, नाक को और रसना को अच्छे लगें, खाने के योग्य है। अत्यन्त शीत प्रदेशों को छोड़कर पृथ्वी के अन्य भागों में ऐसे पदार्थ बहुतायत से मिलते है। अत्यन्त शीत प्रधान देश वास्तव मे मनुष्य के निवास स्थान नहीं है। जो रहते हैं वे छोटे कद के होते हैं और उनके दिमाग भी गिरे हुए होते हैं।

जहाँ तक हो सके प्रकृति की दी हुई वस्तुओं को उनकी असली दशा मे खाना उचित है। हमारे स्वास्थ्य चूँकि वर्षों से गिरे हुए हैं इसलिए असली दशा में उनका खाना कठिन है। तेज मसाले और सम्भव हो तो मीठा व नमक भोजन में न डालना चाहिये।

आजकल भोजन के पकाने का ढङ्ग खराब हो गया है। तरकारियों मे जो पानी डाला जाता है वह जब उबलने लगता है तो उसमें न मालूम कितने गुणकारी तत्व मिल जाते हैं,

किन्तु वह पानी फेंक दिया जाता है और उबाली तरकारी हमारे सामने रख दी जाती है। यह हमारी भूल है, तरकारियों को उतने ही पानी में उबालना चाहिये जितना पानी उनमे सोख जाय। मसाला बिल्कुल न डालना चाहिए। जैसा कहा जा चुका है नमक भी न डाला जाय तो अच्छा है।

खराब आमाशय स्वस्थ आमाशय की तरह भोजन नहीं पचा सकता। वह स्वयं बता देता है कि मेरे लिए कितने भोजन की आवश्यकता है। जब डकार आने लगे, या पेट मे दर्द होने लगे या हवा खुलने लगे, मुख का स्वाद खट्टा हो या किसी भी प्रकार की गड़बड़ी पेट मे पैदा हो तो समझ लेना चाहिये कि या तो हमने अधिक खा लिया है या अनुपयुक्त भोजन किया है। रोगी यदि सोचे तो उसे मालूम हो जायगा कि मेरे लिए कौन भोजन सब से अच्छा है। मोटे आटे की रोटी यदि चबा-चबा कर खाई जाय तो वह सबसे उत्तम भोजन है। यदि यह न पच सके तो बिना छने गेहूँ का आटा खाया जा सकता है क्योंकि जब वह थूक में अच्छी तरह मिल जायगा तभी वह पेट मे जा सकेगा और इसे कोई अधिक भी नहीं खा सकता। इसलिए रोगी को इसे खाने से डरना नहीं चाहिए। रोगी को बहुत हलका और जल्द पचनेवाला भोजन करना चाहिये। यदि रोगी बार-बार भोजन करे तो हल्के से हल्का भोजन भी उसे हानि पहुँचा सकता है।

बीमार के लिए जई की लप्सी सब से उत्तम भोजन है। उसे दूध बिना उबाला और ठंढा पीना चाहिए। यदि वह महकता हो या खट्टा हो गया हो तो उसे नहीं पीना चाहिए। आप सोचते होंगे कि खौलाने से दूध सुपाच्य हो जाता है। ऐसा नहीं होता। उबाला हुआ दूध देर में पचता है क्योंकि पेट में वह देर से सड़ता है और उबालने से हानिकारक पदार्थ उसमें से निकल नहीं सकते

किन्तु उसी में रह जाते हैं। उसकी बल-प्रदान करनेवाली शक्ति कम हो जाती है और शरीर मोटा बनकर फफ्फस हो जाता है। भोजन के साथ ताजे फल खाने चाहिये। यदि भोजन बदलने का जी चाहे तो कभी चावल, कभी जई और कभी गेहूँ हरी-हरी तरकारियों के साथ खा सकते हैं। जो मनुष्य स्वस्थ है उनके लिये नाना प्रकार के प्राकृतिक पदार्थ खाने को प्राप्त हो सकते हैं।

जो सज्जन बीमार है या जिनका आमाशय कमजोर है उन्हे बहुत सादा भोजन कुचल कुचलकर करना चाहिये। उन्हे टी और फल खाना चाहिये। जब तक उनका हाजमा दुरुस्त न हो तब तक स्वाद के वशीभूत होकर गरिष्ठ भोजन न कर लेना चाहिए।

कोई साहब पूछना चाहेंगे कि क्या इस भोजन में कुछ स्वाद भी है। खाने मे स्वाद कहाँ से आता है। स्वाद तो जिह्वा से मालूम होता है, यह उसकी चीज है। स्वाद से और स्वास्थ्य प्रदान करने वाले भोजन से क्या सम्बन्ध। जो चीजें हम बार-बार खाते हैं, वास्तव में वही हमारे स्वाद की चीजें हो जाती है। जिन चीजों मे आज स्वाद नहीं होता वे ही अभ्यास से स्वादिष्ट हो जाती हैं। अतएव स्वाद के प्रश्न को तो हमें उठाना ही नहीं चाहिए।

अप्राकृतिक भोजन से शरीर में विजातीय-द्रव्य उत्पन्न होता है और प्राकृतिक भोजन से नहीं होता। यदि एक बार हम अपने शरीर से विजातीय-द्रव्य निकाल डालें और फिर हमेशा प्राकृतिक भोजन करें और साथ ही रहन-सहन का भी ख्याल रक्खें तो हम पूर्ण स्वस्थ रह सकते हैं।

११—कुछ भोजन प्रकार

प्रायः लोग पूछते है कि हमें कितना भोजन करना चाहिए

और कब भोजन करना चाहिए। कितना भोजन किसको करना चाहिए, यह बतलाना कठिन है क्योकि सब की पाचन-शक्ति एक सी नहीं होती। जिसकी पाचन-शक्ति मन्द है उसे कम खाना चाहिए और जिसकी पाचन-शक्ति अच्छी है उसे अधिक खाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त भोजन की मात्रा बहुत कुछ मनुष्य के काम पर भी निर्भर है। जिनको शारीरिक परिश्रम अधिक करना पड़ता है, जैसे मजदूर आदि, उन्हे भोजन अधिक चाहिए। किन्तु जिन्हे मानसिक काम अधिक करना पड़ता है और शारीरिक काम कम जैसे लेखक, क्लर्क इत्यादि; उन्हें भोजन कम करना चाहिये। हर एक पुरुष को प्रयोग करके देख लेना चाहिए कि कितना भोजन वह पचा सकता है और उतना ही उसके लिए काफी होना चाहिए।

भोजन तीन बार करना चाहिये, प्रातः ७ बजे हल्का जलपान, १२ बजे भोजन और सायङ्काल ७ बजे ब्यालू। जलपान में बिना छने आटे की रोटियाँ और फल या बिना उबाला हुआ दूध। दोपहर के भोजन में ताजा फल, बिना छने आटे की रोटी या दलिया और छिलकेदार दाल या रोटी और दाल, या भात और दाल। उबाली तरकारी साथ मे अवश्य होनी चाहिये। सायङ्काल के भोजन में बिना छने आटे की रोटी, फल और तरकारी या गाढ़ी पकी हुई लप्सी और फल।

भोजन के कुछ नुसखे

रोटी बनाना—

हिन्दुस्तानियों के लिये रोटी बनाने की तरकीब बतलाना निरर्थक मालूम होता है। लुई कूने ने तन्दूर में रोटी सेकने की तरकीब लिखी है किन्तु हमारे घरों की बनी हुई रोटी उस

रोटी से कम लाभदायक नहीं है। ख्याल इस बात का रखना चाहिए कि रोटी सेंक खूब ली जाय और जलने न पावे। बिना छने हुए चोकरदार आटे को कम से कम एक घन्टे तक पानी में भीगते रखना चाहिए।

आटे की लप्सी—

एक बड़ा चम्मच भर बिना छना हुआ आटा ले लीजिये और एक कटोरे में ठंडा पानी डालकर उसी में आटा छोड़कर लेई बना लीजिए। फिर उसे खौलते हुए पानी में डालकर कुछ समय तक पकने दीजिए। उसको बराबर चलाते जाइए। यदि आवश्यकता समझिए तो थोड़ा-सा घी और नमक मिला दीजिए। तबीयत हो तो नमक की जगह कुछ मुनक्के या किसमिस डाल दीजिए, यह लप्सी खाने में बड़ी स्वादिष्ट मालूम होती है।

करमकल्ला और सेब की तरकारी—

कमरकल्ले या बन्द गोभी को धोकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर लीजिए। फिर उसे आधे प्याले पानी में उबालिए। जब वह आधा पक जाय तो सेब के टुकडे काटकर उसमें डाल दीजिए और थोडी देर उसे पकने दीजिए। उसमें थोड़ा सा नमक और घृत भी डाल दीजिए।

करमकल्ला और टमाटर—

उपरोक्त तरीके से करमकल्ले को काटकर अधपका उबालिए। फिर ताजे टमाटरों का रस उसमें डाल दीजिए। यदि जी चाहे तो थोड़ा-सा आलू भी काटकर डाल दीजिए। नमक और घी भी थोड़ा-सा डाल दीजिए। बढ़िया स्वादिष्ट तरकारी बन जायगी।

सोया, बथुआ, पालक और आलू—

शाकों का कूड़ा-कर्कट निकालकर उसे दो तीन बार पानी से

धोइये। इसके बाद बहुत थोड़ा पानी डालकर उबालने के लिए रख दीजिये। कुछ उबलने पर आलू काटकर डाल दीजिए। थोड़ा नमक और घी भी डाल दीजिए।

गाजर और आलू—

गाजर को काटकर थोड़े पानी में उबालिए। और फिर आलू के टुकड़े काटकर डाल दीजिए। थोड़ा घी और नमक भी डालिए।

चावल और सेब—

पाव भर चावल और ५, ७ कटे हुये सेब सब तीन-चार प्याले पानी में उबाल कर खिचड़ी ऐसा बना लीजिए। उसमें थोड़ा-सा घी और नमक डाल दीजिए। इतना तीन आदमियों के लिए काफी है। ऐसा भात बड़ा ही स्वादिष्ट होता है।

लोबिया और टमाटर—

पाव भर लोबिया संध्या समय ठंढे पानी में भिगो देना चाहिए। और प्रातःकाल काफी पानी डालकर उबालिए। जब आधा पक जाय तो आधा कटोरा टमाटर का रस निकाल कर उसमे डाल दीजिए। थोड़ा-सा नमक और घी डाल दीजिए। यादि पानी अधिक रह जाय तो एक चम्मच आटा उसमें डाल दीजिए। इतना दो मनुष्यों के लिए काफी होगा।

हरे सेम और सेब—

सेम की सूत निकाल कर उसको कतर लीजिए। खौलते हुए पानी मे उसे फिर डाल दीजिए। इसके पश्चात् कुछ सेब काट कर डाल दीजिए। थोड़ा-सा घी और नमक भी डालिए। यदि कुछ पतला हो तो थोड़ा-सा आटा डाल दीजिए।

मसूर और आलू बुखारा—

पाव भर मसूर सायङ्काल पानी में भिगो दीजिए और धीमी आँच में उबालिये। उसमें ३० आलूबुखारे और काफी पानी

डालिए। यदि आवश्यकता हो तो थोड़ा-सा नमक और घी डालिए। इतना सामान तीन आदमियों के लिए काफी होगा।

चुकन्दर की चटनी—

चुकन्दर को धोकर उसे आँच से नरम कर लीजिए। उसके फिर टुकड़े-टुकडे करके नींबू के रस में डाल दीजिए। बहुत बढ़िया चटनी तैयार हो जायगी।

आलू और सेव की चटनी—

आलू को उबालकर उनके छिलके उतार लीजिए और उनके टुकडे कर लीजिए। उसी प्रकार थोडे सेव के भी टुकड़े कर लीजिये। दोनों को मिला दीजिए और थोड़ा सा तेल और नींबू का रस डाल दीजिए।

१२—जल-चिकित्सा करने वालों के लिए कुछ विशेष बातें

(१) सबसे पहिले यह बात आवश्यक है कि जल-चिकित्सा में आपका विश्वास हो। इस विषय की पुस्तकें पढ़कर आप अपनी धारणा पक्की कर लीजिए कि जल-चिकित्सा से सब रोग दूर हो सकते हैं और फिर जल-चिकित्सा शुरू कीजिए।

(२) किसी एलोपैथिक डाक्टर की राय जल-चिकित्सा करने के लिए आप न लीजिये। एलोपैथी-चिकित्सा और जल-चिकित्सा मे जमीन-आसमान का अन्तर है, डाक्टर अधिकतर जल-चिकित्सा की ओर से निरुत्साहित करेगे।

(३) साधारणतया सब प्रकार के रोगो मे स्नान करने की विधि एक ही है। हरेक रोगी को कम से कम एक हिप बाथ और सिट्ज बाथ लेना चाहिए। आवश्यकतानुसार स्नानों की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

(४) चिकित्सा के प्रारम्भ मे प्रातःकाल और सायङ्काल

एक एक हिप बाथ एक सप्ताह तक लेना चाहिए। प्रथम ८, १० मिनट से शुरू करें और फिर शक्ति के अनुसार करना चाहिए।

(५) एक सप्ताह के पश्चात् प्रातःकाल सिट्ज बाथ और सायङ्काल हिप बाथ लेना चाहिए। सिट्ज बाथ पहिले १०-१२ मिनट तक करना चाहिए उसके बाद बढ़ाकर २५ मिनट से ३० मिनट तक कर दिया जाय।

(६) रोगी को प्रति सप्ताह चिकित्सा के शुरू में पूरे शरीर का स्टीम बाथ देना चाहिए। विशेषकर उन लोगों को जिनके शरीर विजातीय-द्रव्य के कारण अधिक मोटे हो गये हों। निर्बल पुरुषों को १५ मिनट का और सबल को २० मिनट का स्टीम बाथ काफी होगा।

(७) स्टीम बाथ के बाद सिट्ज बाथ या हिप बाथ का लेना अत्यन्त आवश्यक है।

(८) पृथक-पृथक अंग के यानी स्थानिक स्टीम बाथ किसी भी समय लिये जा सकते हैं। कभी-कभी सन बाथ भी लेना चाहिए।

(९) स्नानों के बाद शरीर में गरमी लाना अत्यन्त आवश्यक है। सबल पुरुषो को खुली हवा मे खूब टहलना चाहिए और कमजोर पुरुषों को कम्बल और रजाई ओढ़कर चारपाई पर लेट रहना चाहिए।

(१०) खाना खाने के दो या तीन घंटे बाद हिप या सिट्ज बाथ लेना चाहिए, तुरन्त ही न लेना चाहिए। उसी प्रकार स्नान करने के एक घंटे बाद भोजन करना चहिए, उसके पहिले नहीं।

(११) तीन-चार सप्ताह चिकित्सा करने के अनन्तर निबल पुरुषों को ४, ५ रोज तक चिकित्सा बन्द कर देना चाहिए लेकिन उनके भोजन का नियम वही होना चाहिए। सबल पुरुष भी दो या तीन दिनों के लिए बन्द कर दें तो अच्छा है।

(१२) स्त्रियों को मासिक धर्म के समय चार रोज तक बाथ न लेना चाहिए।

(१३) कठिन से कठिन कब्ज जब मनुष्य को हो गया हो। तो पेड़ू मे मिट्टी की गद्दी बाँधना अत्यन्त लाभकारी है।

(१४) फोड़े, फुन्सी, सूजन की हालत मे ठंढे जल की गद्दी रखना अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। जल की गद्दी के ऊपर ऊन से बाँधना अत्यन्त आवश्यक है।

(१५) चिकित्सा के साथ भोजन में परहेज करना परमावश्यक है। बिना परहेज के जल-चिकित्सा से पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता।

(१६) चिकित्सा के प्रारम्भ में घी और दूध छोड़ देना चाहिए। एक सप्ताह के लिए नमक भी छोड़ देना चाहिए। जब शक्ति कुछ आ जावे तो बहुत थोड़ा घी खाया जा सकता है और थोड़ा दूध भी पिया जा सकता है।

(१७) कच्चा दूध सबसे गुणकारी है। अधौटा दूध सर्वथा त्याज्य है। यदि कच्चा दूध न पिया जा सके तो थोड़ा पानी डालकर उसे एक दो उबाल दे देना चाहिए, दूध मे चीनी नहीं डालनी चाहिए ।

(१८) मसाले जल-चिकित्सा में एकदम मना हैं। यदि काम न चले तो केवल जीरा, धनियाँ, थोड़ा-सा सौफ काम में लाया जा सकता है।

(१९) जो भोजन कम से कम समय मे पच सके वही भोजन रोगी को देना चाहिए।

(२०) रोगी को भोजन उतना ही करना चाहिए जितना वह पचा सके।

(२१) रोटी बिना छाने आटे की होनी चाहिये। उसी प्रकार भात भी माँड़ सहित खाना चाहिये।

(२२) सब प्रकार के शाक जैसे पालक इत्यादि रोगी के लिए अत्यन्त गुणकारी हैं, उसी प्रकार लौकी और परवल भी अत्यन्त गुणकारी हैं, सब प्रकार की तरकारियों को उबालकर खाना चाहिये। भूनकर नहीं, उबालने में यदि पानी बच जाय तो उसी तरकारी में ही सोखा देना चाहिये, निकालकर फेंक नहीं देना चाहिये।

(२३) भोलदार पदार्थ से ठोस भोजन अच्छा है। क्योंकि भोलदार भोजन को पचाने में आमाशय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है।

(२४) रोगी को बहुत हलका भोजन करना चाहिए, ठूँस ठूँसकर नही खाना चाहिये और भोजन को खूब चबा चबाकर खाना चाहिये।

(२५) चाय, कहवा एक दम न पीना चाहिये। पान और तम्बाकू भी खाना मना है। यदि काम न चले तो दिन रात में दो तीन बीड़े पान खाये जा सकते हैं, किन्तु हर बार पहिली पीक थूक देना चाहिये।

(२६) चिकित्सा के समय मानसिक काम अधिक न करना चाहिये।

(२७) रात को ६ बजे रोगी को सो जाना चाहिये और प्रातःकाल ५ बजे उठना चाहिये।

(२८) चिकित्सा के समय स्त्री प्रसंग नहीं करना चाहिये। यदि तबियत न माने तो दो सप्ताह में एक बार स्त्री प्रसंग किया जा सकता है। स्वस्थ पुरुषों के लिए पन्द्रह रोज में एक बार स्त्री प्रसंग बहुत काफी है।

(२९) जल-चिकित्सा के समय प्रायः रोग का उभाड़ होता है जिसे अंगरेजी मे (crisis) कहते हैं। यह क्षण स्थायी होता है इसलिए इससे घबड़ाकर चिकित्सा न छोड़ देना चाहिये।

१३-सब प्रकार के रोग और उनके उपचार

१—घावों की चिकित्सा

आजकल लोगों का यह विश्वास है कि शरीर के सब प्रकार के घाव केवल चीर फाड़ से ही अच्छे हो सकते हैं। हो सकता है किन्तु कभी-कभी चीर-फाड़ मे बहुत खतरा रहता है। उचित सावधानी न होने से बहुत से रोगी मर जाते हैं। किन्तु जल-चिकित्सा एक ऐसी औषधि है जिससे भयंकर घाव बड़ी आसानी से अच्छे हो सकते हैं।

चीर-फाड़ मे बड़ी तकलीफ होती है जिसका अनुभव केवल रोगी को ही होता है। साथ ही इससे यदि घाव सकुशल पूर गया तो एक बड़ा निशान पड़ जाता है जो शरीर को भद्दा बनाता है। किन्तु जल-चिकित्सा मे न तो किसी प्रकार की पीड़ा होती है और न कोई निशान ही पड़ता है।

जब कभी शरीर का कोई हिस्सा कट जाता है या जल जाता है या कहीं पर कोई शस्त्र भोंक दिया जाता है तो उससे स्नायुयों को झटका लगता है और खून का बहाव चोट खाये हुए हिस्से की ओर वेग से बढ़ता है। उस समय खून के साथ शरीर के अन्दर का विजातीय-द्रव्य भी बाहर निकलता है। यदि हम उसमे प्राकृतिक सहायता पहुँचा दे तो बिना किसी पीड़ा के घाव पूर जायगा।

घाव मे पीड़ा उसी समय उत्पन्न होती है जब वह पूरने लगता है। घाव से थोड़ा सा स्थानिक ज्वर भी हो जाता है। अतएव पहले हमें उस ज्वर को शांत करना चाहिये ताकि स्थानिक ज्वर से सारे शरीर में ज्वर न हो जाय। यदि हम ज्वर को रोक ले तो पीड़ा आप से आप दूर हो जायगी।

स्वस्थ आदमी के घाव जल्द पूरते हैं किन्तु जिनके शरीर विजातीय-द्रव्य से भरे हुए हैं उनके घाव देर से पूरते हैं।

पशुओं के घाव अल्प काल में ही सूख जाते हैं। उनकी औषधि प्रकृति करती है। मनुष्य के घावों को भी प्रकृति अच्छा कर सकती है यदि वे उसको न छुयें। उनके घाव वास्तव में अनावश्यक छेड़-छाड़ से खराब हो जाते हैं।

एक बिल्ली जाल में फँस गई थी। उसकी दाहिनी टाँग टूट गई। वह टाँग को फन्दे से बाहर निकालती रही जिससे कि उसके घाव में मिट्टी और तिनके जमा हो गये। जब वह जाल से छूटी तो इधर उधर टूटी हुई टाँग लिए खुली हवा में घूमती रही। कुछ दिन तक उसका पता न चला और लोगों ने समझा कि वह मर गई। एक हफ्ते के बाद वह बिल्ली एक खलियान में देखी गई। उसका पैर भर गया था किन्तु जहाँ हड्डी टूटी थी वहाँ सूजन बाकी थी। उसके शरीर से मालूम होता था कि एक सप्ताह से उसने भोजन नहीं किया था। उसके सामने बढ़िया भोजन रक्खा गया परन्तु उसने छुआ तक नहीं। वह केवल घाव को चाटती थी। भोजन छोड़ने से शरीर के अन्दर उसकी गरमी शान्त हो गई थी जिससे घाव के भरने मे उसे बड़ी सहायता मिली थी।

कुछ समय बाद बिल्ली सूख कर काँटा हो गई किन्तु उसका पैर बिलकुल ठीक हो गया। अब बिल्ली दूध पीने लगी और धीरे धीरे उसने अपना भोजन बढ़ाना शुरू किया। एक महीने में वह एक दम अच्छी हो गई।

इस उदाहरण से यह बात सिद्ध होती है कि स्नानों के लेने और भोजन को एकदम छोड़ने या थोड़ा भोजन करने से घाव बहुत जल्द अच्छे होते है।

जब कि शरीर में घाव किसी प्रकार हो जाता है तो रुधिर

की बड़ी और छोटी नलियाँ भीत ... न्तु जल-
खून उस समय तक बाहर फेंकती हैं, ... हुत
बाहर के दबाव में समानता नहीं आ
पहाड़ पर चढ़ते हैं तो बहुत ऊँचाई प
इतना कम हो जाता है कि मुँह से, नाक
से खून बहने लगता है। जिस समय
दबाव में समता हो जाती है तो खून निक ... हो जाता
है। जब शरीर में घाव लगता है तो वह रुकावटों से विमुख
हो जाता है जो रुकावटें खून को दबाये रहती हैं और इसलिए
घाव लगते ही खून बाहर निकलने लगता है। सबसे पहले
रुधिर को बन्द कर देना चाहिये।

घाव को कपड़े के कई तह से और भिगोकर उससे लपेट देना चाहिये। यदि संभव हो सके तो कटे हुए हिस्से को पानी के अन्दर डुबाये रहना चाहिये जब तक कि दर्द दूर न हो जाय। यदि पानी के अन्दर न डुबोया जा सके तो उसके ऊपर बूँद-बूँद पानी डालते रहना चाहिये। छोटे घावों के लिए पट्टी के दो चार या छः तह काफी हैं किन्तु बड़े घावों के लिए १० से ३० तह तक की गद्दी रक्खी जा सकती है। अगर गद्दी पतली हुई तो खून नहीं बन्द होगा। उसी तरह गद्दी का एक दम बहुत मोटा होना भी अच्छा नहीं होता।

कपड़े की गद्दी की तह इस प्रकार करनी चाहिये कि वह घाव के चारों ओर एक-एक इञ्च बाहर निकली रहे। इससे घाव के चारों ओर के हिस्से के खून के दौरान में किसी प्रकार की रुकावट न उत्पन्न होगी, पानी की गद्दी के ऊपर ऊन का कपड़ा लपेटना चाहिए। जब दर्द फिर मालूम होने लगे तो यह समझना चाहिए कि भीतर की गद्दी सूख गई है। इसलिए घाव

खोल कर गद्दी को तर करके घाव को उसी विधि से फिर बाँध देना चाहिए।

कुछ दशायें ऐसी होती हैं जिनमें घाव पर मिट्टी लगाने में अधिक फायदा होता है। मिट्टी की गद्दी की तरकीब बतलाई जा चुकी है। कुछ घंटों के बाद मिट्टी की गद्दी बदलते रहना चाहिए।

स्वाभाविक और अनुत्तेजक भोजन करने से घाव बहुत जल्द भरता है। अनुभव से मालूम हुआ है कि कम भोजन करने से भी घावों के पूरने में बड़ी सहायता मिलती है। बिना छाने आटे की रोटी और फल, घाव के रोगियों के लिए सबसे उत्तम भोजन है। साथ-साथ सिट्ज और हिपबाथ लेते रहना चाहिए। इस प्रकार कपड़े या मिट्टी की पट्टी बाँधने से हलका भोजन करने से और स्नानों के लेने से कठिन से कठिन घाव भी बहुत जल्द अच्छे होते हैं।

एक कारखाने के चालीस वर्षीय एक मनुष्य का बाँया हाथ आरे से कट गया और हड्डी दिखलाने लगी। कुछ मिन्टों के बाद वह मनुष्य मूर्छित हो गया और आध घंटे तक उसको होश न हुआ। कटे हुए हिस्से में पट्टी बाँधी गई और उसका हाथ ठंढे पानी में डुबो दिया गया। इस क्रिया से उसका दर्द घट गया और उसको बड़ा आराम मालूम होने लगा। यह चिकित्सा बराबर जारी रक्खी गई। गद्दी के ऊपर ऊन का वस्त्र भी लपेटा गया। पन्द्रह रोज में उसका घाव बिलकुल पूर गया। इस बीच में दिन में वह दो बार स्नान लेता था और स्वाभाविक भोजन करता था। चार सप्ताह में पूर्ववत् वह अपना काम करने लगा।

अन्दरूनी चोटें और अन्दरूनी घाव—

बहुत से घाव ऐसे होते है जिनके मुँह भीतर की ओर होते है। ऐसे घावों को अच्छा करना बहुत कठिन है। इन

भीतरी घावों से न मालूम कितने रोगी मर जाते हैं किन्तु जल-चिकित्सा ही ऐसी औषधि है जो इन भीतरी घावों को बहुत आसानी से अच्छा कर सकती है। सिट्ज बाथ से अनेकों रोगियों के भीतरी घाव अच्छे हुए हैं। स्टीम बाथ के साथ-साथ जिस जगह पर भीतरी घाव हो उस जगह पर स्थानिक स्टीम बाथ भी लेना चाहिए।

मोजे बनाते समय मशीन से एक लड़की के दाहिने हाथ की अँगुली में छेद हो गया। बहुत दवा करके और उससे ऊबकर वह कूने साहब के पास गई। उस समय लड़की की अँगुली सूज गई थी और उसमें भयानक पीड़ा हो रही थी। कूने साहब ने ठंढे पानी की पट्टी बाँधी और रोजाना दो स्टीम बाथ देने लगे। स्टीम बाथ के साथ-साथ सिट्ज बाथ भी दिये जाते थे। हाथ की सूजन कम हो गयी और दर्द हमेशा के लिए चला गया। चार सप्ताहों में वह लड़की अपना काम फिर करने लगी।

जलने के घाव—

जलने से जो पीड़ा उत्पन्न होती है उसको दूर करने के लिए ठंढा पानी सबसे उत्तम औषधि है। जो स्थान जल गया हो उसे पानी में डूबो देना चाहिए। पानी में डूबते ही उसमें पहले दर्द बढ़ेगा किन्तु थोड़ी देर में वह गायब हो जायगा। जब दर्द कम हो जाय तो उसमें पानी की पट्टी बाँधना चाहिए। इस तरकीब से खराब से खराब जलने के घाव अच्छे हो जाते हैं। यदि रोगी के घाव जल्दी अच्छे न हों तो यह समझना चाहिए कि रोगी का शरीर विजातीय-द्रव्य से भरा हुआ है। ऐसी हालत में उसे हिप बाथ और सिट्ज बाथ देना चाहिए और उसे स्वाभाविक भोजन खिलाना चाहिए।

एक मनुष्य तीन जगह पर जल गया। जलने के दो घाव गर्दन पर थे और एक पैर पर। उसने पहले डाक्टरी चिकित्सा

की, किन्तु उसने कोई लाभ न हुआ। अन्त में वह कूने साहब के पास गया। कूने साहब ने ठंढे पानी से घावों को धोकर उनपर जल की गद्दियाँ रख दी। दो घंटो में जलन कम हो गई। दो दिन के बाद घावों की रंगत एक-दम बदल गई। पाँच दिन मे वह रोगी अपने काम पर जाने लगा।

बंदूक की गोली के घाव—

गोली के घावों की चिकित्सा भी उसी प्रकार होती है जिस प्रकार कि अन्य घावों की। इसका सम्बन्ध लड़ाई से है। अतएव हर एक सिपाही को जानना उचित है घायल को सहायता पहुँचाने के लिए पहले क्या करना चाहिए। कुछ लोगों का कहना है कि गोली पहले निकाल लेना चाहिए, क्योंकि यदि वह शरीर में रह गइ तो शरीर को हानि पहुँचाने का भय रहता है। इस गोली के निकालने में बहुत अधिक चीर-फाड़ की आवश्यकता होती है। गोली उतनी भयानक नहीं होती जितना भयानक गोली के निकालने मे शरीर का चीरा हुआ भाग होता है। जल-चिकित्सा मे इस गोली को निकालने के लिए चीर-फाड़ की जरूरत नही है। प्रकृति आप से आप उसे किसी न किसी समय निकाल देगी।

अतएव गोली की तरफ से ध्यान हटाकर घाव के जलन को बन्द करने की ओर ध्यान लगाना चाहिए। पानी से धोकर पानी की गद्दी उस पर बाँध देना चाहिए। हर-एक सिपाही को कुछ थोड़ा-सा कपड़ा या मिट्टी अपने पास रखना चाहिए। जिस सिपाही को जिस समय घाव लगे उसे अपनी चिकित्सा उसी समय स्वयं करनी चाहिए।

१८८३ में एक सज्जन कूने साहब के पास गये, जिनके पेट मे सन् १८७० ई० की लड़ाई में एक गोली लगी थी। गोली निकाल ली गई थी किन्तु घाव नहीं पूरा था। १३ वर्ष तक उससे मवाद

कुछ न कुछ निकलता रहा और रोगी की दशा दिन ब दिन खराब होती गई। कूने साहब ने उसके चेहरे को देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि इतने वर्षों तक घाव न पूरने का कारण वह विजातीय-द्रव्य था जो उसके शरीर के भीतर भरा हुआ था। कूने साहब ने उसको स्टीमबाथ और साथ ही साथ हिप बाथ और सिट्ज़ बाथ दिये और रोगी भोजन भी स्वाभाविक करने लगा। एक सप्ताह के भीतर रोगी के घाव से मवाद का निकलना बन्द हो गया। उसने कुछ समय तक जल-चिकित्सा जारी रक्खी और अन्त में वह बिलकुल चंगा हो गया।

हड्डियों का टूटना—

तीन बरस के एक सज्जन के दाहिने हाथ का ऊपरी भाग कोहिनी के पास टूट गया। उसने ठंडे पानी से तुरन्त धोकर उस पर पानी की गद्दी बाँध दी। कूने साहब के आदेशानुसार उसने कागज के पट्ठों की बत्तियों में हाथ को बाँध दिया और उस पर भीगा गद्दी रखता गया। साथ-साथ उसने हिप बाथ और सिट्ज़बाथ लिए और स्वाभाविक भोजन किया। चौबीस घंटे में उसका दर्द और सूजन एक दम जाते रहे। तीन सप्ताह में टूटी हुई हड्डी बिलकुल ठीक हो गई।

खुले घाव—

गहरे कटे घाव, नोकदार शस्त्रों के भोंकने के घाव बड़ी आसानी से जल-चिकित्सा द्वारा भरते हैं। डाक्टर लोग उनको चाहे जितने नाम से पुकारें किन्तु वे सब एक ही वस्तु हैं और वे यही सिद्ध करते हैं कि शरीर सड़ रहा है। दवा द्वारा जो घाव अच्छे किये जाते हैं वे वास्तव में अच्छे नहीं होते। समय पाकर शरीर के दूसरे हिस्सों में फूट निकलते हैं। बहते हुए घाव इस बात को साबित करते हैं कि शरीर के अंदर पुराने रोग मौजूद हैं। यह शरीर के भीतर संचित विजातीय-द्रव्य के कारण

उत्पन्न होते हैं। वे उन रोगों से पैदा होते हैं जो औषधियों द्वारा किसी समय दबा दिये गये थे। वे प्राय: आयोडाइन, ब्रोमाइन, कुनैन आदि औषधियां से उत्पन्न होते है जिनका सेवन हम रोग को अच्छा करने के लिए करते है और जो शरीर के लिए बलवान विष हैं। कूने साहब के मत से टीका भी शरीर के भीतर विष प्रवेश करने का एक साधन है। इन औषधियों से मनुष्य जाति खराब होती जा रही है। इनसे जीवन-शक्ति निर्बल हो जाती है जिससे आगे उपदंश, मिर्गी, पागलपन आदि भयानक रोग उत्पन्न होते हैं। यह औषधियाँ वर्षों पहिले शरीर के भीतर विजातीय-द्रव्य उत्पन्न होने का बीज बो देती हैं जिससे आगे चलकर ये खुले घाव पैदा हो जाते हैं।

खुले हुये घावों मे विजातीय-द्रव्य उनके द्वारा बहता रहता है। इसमें ज्वर भी होता है। ज्वर इस वास्ते होता है कि शरीर के भीतर विजातीय-द्रव्य के उफान से गर्मी पैदा होती है अतएव औषधि करने के समय, इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि ज्वर एकदम कम कर दिया जाय। ज्वर कम करके घावों को भरने के लिए हिप बाथ, सिट्ज बाथ, स्टीम बाथ और प्राकृतिक भोजन अत्यन्त लाभकारी हैं।

पचास बरस के एक सज्जन की टाँगों और पैरों में घुटने तक खुले हुए घाव थे। घावों की संख्या तीस या चालीस थी। सब से बड़ा घाव चार इंच लम्बा और चार इंच चौड़ा था। उनमे दुर्गन्धित पतला मवाद निकलता था। घाव थोड़ी देर के लिये भर जाते थे किन्तु उनमे ऐसी प्रचंड एक खुजली उत्पन्न होती थी कि रोगी जब खुजला देता था तो वे घाव फिर बहने लगते थे। वह खुजली त्वचों के भीतर संचित विजातीय-द्रव्य के उफान से पैदा होती थी। जब घाव बहने लगते थे तो खुजली बंद हो जाती थी। कुछ घाव तो हड्डियो तक पहुँच

चुके थे। ऐसी स्थिति में वह रोगी कूने साहब के पास गया और जल चिकित्सा करने की प्रार्थना की।

उसका हाजमा बिगड़ चुका था। हलके से हलका भोजन भी वह नहीं पचा सकता था। फेफड़ो की दशा भी खराब हो गई थी। विजातीय-द्रव्य की मात्रा बढ़ गई थी। रोगी को यह नहीं मालूम था कि वास्तव में उसके रोग का कारण विजातीय-द्रव्य है जो शरीर के भीतर भरा हुआ है।

कूने साहब ने ठंढे पानी की गद्दी घावो पर रक्खी और ऊपर से ऊनी कपड़ा बाँध दिया। रोगी से प्राकृतिक भोजन करने, खुली हवा में रहने और प्रतिदिन चार सिट्ज बाथ लेने के लिए कहा गया। उसने पट्टियो पर तो विशेष ध्यान दिया किन्तु भोजन और स्नान पर ध्यान नहीं दिया। परिणाम इसका यह हुआ कि छः महीनों तक उसको कोई लाभ न हुआ। इसके पश्चात उससे कहा गया कि आप भोजन और स्नानो पर विशेष ध्यान दीजिये। दूसरे छः महीने मे उसको बहुत लाभ हुआ। छोटे-छोटे घाव एकदम पूर गये और बड़े-बड़े भी करीब-करीब मुरझा गये। खुजली एकदम जाती रही। उसका हाजमा क्रमशः अच्छा होता गया। इस लाभ को देखकर रोगी ने अब और अधिक उत्साह से जल-चिकित्सा करना शुरू किया। घाव नीचे के अच्छे होने लगे और पेड़ू के नजदीक ऊपर निकलने लगे। यह रोग अच्छा होने का एक शुभ लक्षण था। जब ऊपर फोड़ा निकल आया तो रोगी ने समझा कि जल-चिकित्सा से कोई लाभ नहीं है। कूने साहब ने उसकी व्यवस्था उसे दी। उन्होने कहा यह बीमारी उसी समय अच्छी होगी जब कि वह पेड़ू तक पहुँच जायगी जहाँ से यह उत्पन्न हुई थी। उस रोगी ने तीन वर्ष तक चिकित्सा की और इसके पश्चात् वह एक दम चंगा हो गया।

विषैले कीड़े-मकोड़ों का काटना

पागल कुत्ते और साँप का काटना—

मनुष्य के रुधिर पर हर एक वस्तु का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ता है। जिस समय रुधिर का स्पर्श विजातीय-द्रव्य से होता है उस समय उसमें तेजी उत्पन्न होती है। जब साँप काटता है तो खून में ज्वर की दशा उत्पन्न होती है। जिस समय शरीर में विजातीय-द्रव्य अधिक होता है तो विष का असर अति शीघ्र होता है। विजातीय-द्रव्य भी उमड़ने लगता है और विष की भयानकता को बढ़ा देता है। जितना अधिक विजातीय-द्रव्य शरीर में मौजूद रहता है उतना ही अधिक विष पहुँचाने पर खून का जोश उत्पन्न होता है। यही कारण है कि मधु की मक्खी जब काटती है तो किसी के तो एक बहुत बड़ा ददोरा पड़ जाता है और किसी को मच्छड़ काटने के सदृश एक छोटा सा निशान। बहुत से ऐसे भी रोगी देखे गये हैं जिन पर कुत्ते काटने का असर बहुत अधिक हुआ है और किसी पर कम। उसी प्रकार साँप के काटने से किसी को सिर्फ ज्वर उत्पन्न होता है और किसी की मृत्यु हो जाती है।

एक बालक जंगल मे लेटा हुआ था। अचानक एक साँप ने उसके सर में काट लिया। उसके पेड़ू में ऐंठन पड़ गई और पंद्रह घंटे तक उसको पेशाब न उतरा। लोग उसे कूने साहब के पास ले गये और उसकी जल-चिकित्सा होने लगी। उसको सारे शरीर का स्टीम बाथ और स्थानिक स्टीम बाथ दिये गये जिसको उसको खूब पसीना निकला साथ ही सिट्ज़ बाथ और हिप बाथ भी दिये गये और खाने को स्वाभाविक भोजन दिया गया। थोड़ी देर में लड़के को पेशाब उतरा और उसके प्राण बच गये।

हर प्रकार के विषैले कीड़ों के काटने से काटे हुए स्थान पर

एक प्रकार की सूजन पैदा हो जाती है। रोगी को उस स्थान पर बड़ी गर्मी मालूम होती है और ज्वर होने लगता है। अतएव उस समय जलन और ज्वर को रोक देना चाहिए। सबसे पहिले जिस जगह विषैले जंतु ने काटा हो उसको ठंढे पानी से धोना चाहिये अर्थात् उसे जब तक सम्भव हो सके पानी के अन्दर रखे रहना चाहिए। इसके बाद उस पर पानी की गद्दी बाँधना चाहिए, साथ साथ बारी-बारी से हिपबाथ और सिट्ज बाथ लेना चाहिये।

यह प्राय. देखा गया है कि शरीर के जिस हिस्से पर विजातीय-द्रव्य अधिक होगा उसी हिस्से पर विषैले जंतु प्रायः काटा करते हैं। पानी की गद्दी का गुण जितना वर्णन किया जाय थोड़ा है। वह शरीर के विष को निकाल देती है या उसे एक थैली मे लपेट कर उससे होने वाली हानि को नष्ट कर देती है।

जब कि सूजन फैल जाती है और शरीर के अन्य भागों मे पहुँचने लगती है तो उस समय अधिक भय होता है। उस हिस्से को एकदम पानी में डुबोना चाहिए और उस पर पानी की गद्दी बाँधना चाहिए। इसमें देरी नहीं करनी चाहिए। सिट्ज बाथ और हिप बाथ बारी-बारी से दो-दो, तीन-तीन घंटे के अंतर में लेना चाहिये। बुखार उतरने पर रोगी अति शीघ्र चंगा हो जाता है। उस बीच में रोगी को भोजन न दिया जाय तो अच्छा है किन्तु यदि देने की जरूरत ही पडे तो थोडी-सी रोटी और फल देना चाहिये। पानी पीने को बराबर देते रहना चाहिये। स्नानों के बाद गरमी लाने के लिये रोगी को धूप मे बैठाना चाहिये या खुली हवा मे व्यायाम कराना चाहिये। कटे हुए भाग में स्टीम बाथ देना चाहिये और उसके बाद ठंढे स्नान।

बीस वर्ष के एक नौजवान के एक बायें हाथ में एक विषैले कीड़े ने काट खाया। कुछ घंटों में उसको दर्द मालूम हुआ और उसका हाथ सूजने लगा। थोड़े समय के अनन्तर उसका पूरा

हाथ फूल गया और डाक्टरों ने कहा कि इसके हाथ में विष फैल गया है इस वास्ते इसके जान की रक्षा के लिए हाथ काट देना चाहिये। एक जल-चिकित्सक महोदय वहाँ पर खड़े हुए थे। उन्होने उस हाथ पर स्टीम बाथ दिया और ट्रिपबाथ दिया। हाथ पर पानी की गद्दियाँ भी बाँधी गईं, रोगी को धूप में खूब दौड़ाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े समय मे रोगी बिलकुल चंगा हो गया।

२—सब प्रकार के ज्वर

इस समय नाना प्रकार के ज्वर जो फैले हुये है, उनके नाम भिन्न-भिन्न क्यों न हो किंतु सबका कारण विजातीय-द्रव्य का उफान ही है। जो देश ज्यादा गरम होता है वहाँ गरमी के कारण विजातीय-द्रव्य मे उतना ही अधिक उफान होता है और इसलिए उतना ही ज्वर बढ़ता है। गरम देशो मे प्राय. उन लोगों को भी ज्वर आता है जिन लोगो के शरीर में विजातीय-द्रव्य की मात्रा बहुत कम होती है। जिन देशों मे न गरमी अधिक पड़ती है और न सरदी वहाँ ज्वर की तीव्रता इतनी नही होती। गरम देशों में ज्वर भिन्न-भिन्न रूपो में प्रकट होता है। पीला ज्वर सब से अधिक भयानक होता है। मनुष्य ज्यो ज्यों दवाओं को खाता है, उतना ही उसका शरीर पीला पड़ता जाता है और इसलिये उसको पीला ज्वर अधिक तंग करता है। थकावट, सर का दर्द, ऐंठन, प्यास, त्वचा का रूखापन इसके लक्षण हैं। तत्पश्चात् मनुष्य का पाखाना काला पड़ जाता है और काले रंग का वह कै करने लगता है।

हमारा कर्तव्य यह होना चाहिये कि हम ज्वर को शुरू से ही रोक दें। इसके साधन हमेशा हमारे पास मौजूद रहते हैं। पहले अनुत्तेजक नियमित भोजन किया जाय, दूसरे रहन-सहन सादा हो। तीसरे हिप और सिट्ज बाथ लिए जायें। गरम देशो

में यद्यपि बहुत ठंडा जल प्राप्त नहीं हो सकता किन्तु प्रकृति ने वहाँ जितना ठंढा जल दे रक्खा है वह स्नानों के लिए काफी लाभकारी है। कुनैन और दूसरी औषधियों से ज्वर यथार्थ में अच्छा नहीं हो सकता उससे रोग दब जाता है और समय पाकर और भी अधिक भीषण रूप धारण कर लेता है।

जल-चिकित्सा से तीव्र से तीव्र ज्वर, बहुत जल्द आराम होते हैं। जितने अधिक देर तक और जितने अधिक बार स्नान ज्वर में किये जायें उतने ही अधिक वे लाभ करते हैं। एक सज्जन ने निम्नलिखित पत्र कूने साहब को लिखा था।

प्रिय कूने साहब,

मेरे पास आपकी दो पुस्तकें मौजूद हैं। उन्हीं के अनुसार मैं जल-चिकित्सा करता हूँ। मुझे फायदा हुआ है। इसलिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे एक बार इतना कठिन ज्वर आया था कि मैं बेहोश हो गया। मैंने जल चिकित्सा करना शुरू किया। पहले पहल कुर्सी में बैठकर मैंने स्टीम बाथ लिया और इसके बाद एक हिपबाथ। परिणाम बहुत ही अच्छा हुआ। मैं चारपाई से उठकर इधर उधर घूमने लगा जिसको देखकर मेरे दोस्त और मेरी स्त्री को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मैंने इसी चिकित्सा से अनेकों रोगियों को अच्छा किया है।

मलेरिया ज्वर—यह ज्वर भी एक भयानक ज्वर है। यह जाड़ा देकर आता है और जब पसीना आ जाता है तो उतर जाता है। यह ज्वर कभी रोज आता है और कभी कभी दूसरे रोज। इसकी चिकित्सा बड़ी सरल है। मिट्टी की एक मोटी पट्टी तीन चार घंटे तक सम्पूर्ण पेड़ू पर बाँध देना चाहिये। पट्टी के लगाने से पाखाना-पेशाब साफ होता है, भीतरी जलन कम होती है और घबड़ाहट भी रुकती है। इसके बाद हिप बाथ और सिट्ज बाथ बारी-बारी से लेना चाहिये।

सन बाथ भी इस ज्वर के लिए बड़े लाभदायक हैं। सन बाथ उतना ही देना चाहिये जितना रोगी सह सके। भूक लगने पर दूध और फल दिये जायँ, अन्न नहीं देना चाहिये। जिस रोज बुखार की बारी हो उस रोज आहार कुछ भी न करायें। हिप बाथ और सिट्ज बाथ देते रहें। चार-पाँच रोज बाद रोगी की हालत बिलकुल सुधर जायगी। और उस समय फिर अन्न दिया जा सकता है।

कुछ लोगों को बहुत पुराना ज्वर होता है। इस ज्वर को दूर करने के लिए समय अधिक लगता है। रोगी को घबड़ाना न चाहिये।

जो चिकित्सा ऊपर मलेरिया ज्वर के लिए बतलाई गई है वही चिकित्सा टाइफायड और एनट्रिक्ट ज्वरों में भी लाभदायक होती है।

३—प्लेग की बीमारी

प्लेग आज कई वर्षों से हिन्दुस्तानियों को बहुत तङ्ग कर रहा है। यह चार प्रकार का होता है—1.Bebunic, 2.Neubunic, 3. Septisemic, और चौथा Intestinal।

पहले प्रकार के प्लेग में गिल्टी निकल आती है, दूसरे में फेफड़ों में जलन होती है, तीसरे में खून खराब हो जाता है, और चौथे में अंतड़ियों में विकार उत्पन्न होता है।

जब यह बीमारी कहीं पर आक्रमण करती है तो सबसे पहले इसके शिकार चूहे होते हैं। चूहे एक घर से दूसरे घरों मे बराबर प्रवेश करते रहते हैं, इसलिए यह बीमारी घर-घर में फैल जाती है। जिस समय चूहे मरने लगें तो प्लेग से बचने का सब से अच्छा उपाय मकान को छोड़ देना है। यदि वहाँ रहना पड़े तो घर को खूब स्वच्छ रखना चाहिये। नालियों और पाखाने को फिनायल से धुलवाना चाहिये, घर में हवन कराना चाहिये

और कभी-कभी नीम की सूखी पत्तियाँ जलवाना चाहिये जिस का धुआँ घर में व्याप्त हो जाय। अगर कोई चूहा मर जाय तो उसे शहर के बाहर फिंकवा देना चाहिये।

यदि कोई रोगी प्लेग से पीड़ित हो गया हो तो उसकी चिकित्सा इस प्रकार करनी चाहिये। रोगी को आध घण्टे तक पूरे शरीर का स्टीम बाथ देना चाहिये और उसके बाद फिर आध घंटे का हिपबाथ। इसके पश्चात चार-चार घंटो के पश्चात् रोगी को उस समय तक सिट्ज बाथ देना चाहिये जब तक कि उसका ज्वर दूर न हो। यदि पहले स्टीम बाथ से पसीना न आया हो तो दूसरे दिन स्टीम बाथ देना चाहिये।

यदि रोगी को कब्ज अधिक हो और स्नानों से पाखाना न आया हो तो पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी बाँधनी चाहिए। यदि गिल्टी निकल आई हो तो उसमें स्टीम बाथ देना चाहिए और उसके बाद सिट्ज बाथ। यदि गिल्टी में जलन उत्पन्न हुई हो तो ऊनी कपड़े से उस पर गरम पानी डालना चाहिए और थोड़ी देर बाद ठंढे पानी की गद्दी उसमे बाँध देना चाहिये। इस गद्दी को समय-समय पर तर करते रहना चाहिए।

रोग की हालत मे रोगी को यदि भूख न लगी हो तो कुछ भी खाने को न देना चाहिए। जब कुछ भूख लगे तब फल और दूध देना चाहिए। रोगी की हालत बिलकुल अच्छी हो जाय तब अन्न खाने को देना चाहिए।

४—मियादी बुखार (Typhus), पेचिश, हैजा और अतिसार

मियादी बुखार प्रायः जवानों को पकड़ता है। यह सब ज्वरों से अधिक तीव्र होता है। इससे लोग बहुत डरते हैं और हजारों स्त्री पुरुष इसकी भेंट प्रति वर्ष होते हैं। जल-चिकित्सा चुटकी बजाते इस ज्वार को दूर करती है। यदि स्वाभाविक

रीति से स्नानों के पश्चात् रोगी को पसीना आने लगा तो फिर कोई भय की बात नहीं रह जाती। जिन रोगियों को महीनों की चिकित्सा से लाभ नहीं हुआ था उन्हें कूने साहब ने कुछ ही दिनों में अच्छा किया है।

यह बात अनुभव से सिद्ध हो चुकी है कि तमाम तीव्र रोगों को स्टीम बाथ से बहुत लाभ पहुँचा है। रोगी की शारीरिक दशा के अनुसार कम या अधिक स्टीम बाथ देना चाहिए। सिट्ज और हिप बाथ दोनों बारी-बारी से लेना चाहिए।

पेचिश और हैजा—

पेचिश और हैजे में भी जल-चिकित्सा से काफी लाभ पहुँचा है। इन दोनो बीमारियों में हाजमें की दशा खराब हो जाती है और भयानक भीतरी ज्वर होता है। हैजे मे तो यह ज्वर इतना भयानक होता है कि सारा शरीर जलकर कोयला हो जाता है। रोगी के होठ, नाक और आँखों के देखने से इस कथन की सत्यता भलीभांति मालूम हो सकती है।

पेचिश और हैजा उन्हीं लोगों पर विशेष रूप से आक्रमण करते है जिनमें विजातीय द्रव्य अधिक होता है। इसलिए यह कोई संयोग की बात नहीं होती कि अमुक पुरुप को हैजा हो गया। अनुभव से यह बात मालूम हुई कि जिनका हाजमा खराब होता है, हैजा उन्हीं को प्रायः होता है।

वास्तव मे हैजा शरीर को साफ करने का एक उत्तम साधन है। बाहरी कारणो से जैसे ठंढक, डर, मौसम आदि से जब विजातीय-द्रव्य मे जोश उमड़ता है तो वह पेड़ू की ओर लौटने लगता है। यदि शरीर मे शक्ति है तो वह विजातीय-द्रव्य के जोर को रोक लेता है और मनुष्य पाखानो के बाद फिर वर्षों के लिये अत्यन्त स्वस्थ हो जाता है। विरुद्ध इसके यदि दवा खाते-खाते मनुष्य की शक्ति नष्ट हो गई है तो वह उस जोर को

नही रोक सकता और उसके प्राण खतरे में पड़ जाते हैं। ज्वर की दशा मे चाहे पेचिश हो अथवा हैजा हो, एक ऐसी क्रिया उत्पन्न होती है जो जल्दी देखने मे नही आती। भीतरी ज्वर केवल हाजमे पर आक्रमण करता है जिसका परिणाम यह होता है कि भीतर की ओर तो गरमी होती है और बाहर की ओर सरदी।

इन बीमारियों मे स्नान द्वारा भीतरी गरमी को पहले रोक देना चाहिए और रोगी को खूब पसीना लाना चाहिए। भीतरी जलती हुई गरमी को सहन करने के लिए यदि शरीर में काफी शक्ति है तो रोगी शीघ्र चङ्गा हो जायगा। किन्तु यदि कम है तो अधिक समय लगेगा।

जिन रोगियो का भीतरी ज्वर बाहर आ जाता है वे जल्द अच्छे हो जाते हैं किन्तु जिन्हे बाहरी बुखार नही होता है वे मर जाते हैं। हैजा और पेचिश को अच्छा करने मे सिट्ज बाथ विशेष सहायक होते हैं। साथ ही पेड़ू का स्टीम बाथ भी लेना चाहिए। स्टीम बाथ के पश्चात् एक सिट्ज या हिप बाथ अवश्य लेना चाहिए। सम्भव हो तो कभी-कभी सन बाथ भी ले लेना चाहिए। कुछ रोगियो को तो केवल कुछ ठंढे स्नानों से ही लाभ हो जाता है। भोजन स्वाभाविक होना चाहिए।

पेचिश थोड़े से हिप बाथ और सिट्ज बाथ ही से अच्छी हो जाती है। यदि इससे अच्छी न हो तो एक ईंट गरम कीजिए और उसे एक ऊनी वस्त्र में लपेटकर गुदा के नीचे रख लीजिए। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि दस्त शीघ्र बन्द हो जायँगे। कुछ घंटों के बाद एक सिट्ज बाथ लेना चाहिए और गरम ईंट का प्रयोग फिर करना चाहिए।

आंतसार कै के साथ—

यह एक प्रकार का हैजा ही है। यह प्रायः उन बच्चों को

विशेष रूप से होता है जिन्हें तैयार किया हुआ बाजारू बोतल का दूध पिलाया जाता है, और जिससे उनके शरीर मे विजातीय-द्रव्य भर जाता है। जो चिकित्सा हैजे की है वही चिकित्सा इसकी भी है। बच्चों के बदन में माँ के साथ लेटकर गरमी लाई जा सकती है।

साधारण अतिसार----

(Diarrhoea) यह एक प्रकार की पेचिश और हैजा है। जिसमें विजातीय-द्रव्य को बाहर निकाल फेकने की कोशिश होती है। यदि यह चिरकाल तक न रहे तो इसे स्वस्थ होने का एक उत्तम साधन समझना चाहिए।

डायरिया और कब्ज देखने में एक दूसरे के विरुद्ध प्रतीत होते हैं किंतु वास्तव में दोनो पाचनशक्ति की खराबी से उत्पन्न होते हैं जो भीतरी गरमी और अधिक भोजन से उत्पन्न होती है। जिस प्रकार एक ही कारण से एक मनुष्य स्थूल और दूसरा दुबला हो जाता है उसी प्रकार से एक ही कारण से एक को अतिसार होता है और दूसरे को कब्ज।

यदि स्नानो से कब्ज न खुले तो मैदान में शौच जाना चाहिये। ताजी हवा का शौच पर अधिक प्रभाव पड़ता है। जो काम अँधेरे पाखाने में असम्भव था वह ताजी हवा में सरल हो जाता है।

५---खुजली, जूँ पड़ जाना, आँतों का उतरना

यह बात हमको प्रत्यक्ष देखने में आती है कि गरम देश मे वसन्त ऋतु के एक दिन में सैकड़ो कीड़े वृक्षों के हरे-हरे पत्तों पर उत्पन्न होते है। वे पत्तियों को देखते-देखते नाश कर देते है किन्तु हम उनका कुछ भी नही बिगाड़ सकते। इसके विरुद्ध एक ठंढी रात मे वे कीड़े उतने ही जल्द मर जाते हैं जितनी जल्द वे पैदा हुए थे।

प्रकृति ने एक रात्रि में ठंढक के कारण वह काम करके दिखलाया जिनका होना असम्भव था। यह कीड़े वास्तव में उन्ही प्राकृतिक नियमों के आधीन रहते हैं। इससे यह परिणाम निकला कि खुजली के कीड़े जूँ और दूसरे प्रकार के कीड़े उन्हीं स्थानो में रहते है जहाँ उनको भोजन की सामग्री मिलती रहती है। अर्थात् वे स्थान जो रोगी हो जाते हैं, यानी जहाँ विजातीय-द्रव्य भरा रहता है। इन कीड़ों का जीवित रहना असाधारण टेम्परेचर मे भी रहता है जो प्रायः उन मनुष्यों में होता है जिनका शरीर विजातीय-द्रव्य से भरा हुआ है। यदि हम टेम्परेचर को कम कर दें और विज तीय-द्रव्य को शरीर के बाहर निकाल दें तो हम उन कीड़ों से मुक्त हो सकते हैं।

भीतरी टेम्परेचर के कम करने का सबसे उत्तम उपाय ठंढे स्नानों का लेना और स्वाभाविक भोजन करना है। औषधि के सेवन करने से स्थायी आराम नहीं हो सकता।

एक सज्जन अँतड़ियों के भिन्न २ प्रकार के कीड़ों से पीड़ित थे। उनकी पाचन-शक्ति खराब हो गई थी और उनके स्नायु भी विकृत हो चुके थे। वे मरने ही वाले थे। उनके पाखाने में अनेकों कीड़े मौजूद रहते थे। वे कुने साहब के पास गये और उनके आदेशानुसार जल-चिकित्सा करने लगे। दूसरे महीने में उनकी हालत बदल गई और कुछ समय के पश्चात् वे बिलकुल अच्छे हो गये। उनको हिप बाथ और सिट्ज़बाथ दिये गये थे और अनुत्तेजक कच्चा भोजन दिया जाता था।

एक सज्जन खुजली से पीड़ित थे। उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी। उन्होंने सैकड़ों दवायें की थीं किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ था। वे कूने साहब के पास गये और उनके आदेशानुसार जल-चिकित्सा करने लगे। उनको हिप बाथ और सिट्ज़ बाथ दिये गये और कभी-कभी स्टीम बाथ भी दिया जाता था।

भोजन उनका स्वाभाविक था। तीन सप्ताह में वे बहुत अच्छे हो गये। और चौथे सप्ताह में वे बिलकुल चंगे हो गये।

आँतों का उतरना

आँत के उतरने का कारण पेड़ू मे विजातीय-द्रव्य का इकट्ठा होना और उस पर तनाव होना है। तनाव के कारण जब ऊपर से कोई बोझ पड़ता है तो झिल्ली में एक छेद हो जाता है। भिन्न-भिन्न रोगियों में भिन्न-भिन्न स्थानों मे छेद होता है किन्तु सब छेदो का कारण एक ही होता है। कुछ लोग कहते है कि गिरने से या चोट लगने से आँतें उतरती है किन्तु उनका यह भ्रम है।

जल-चिकित्सा द्वारा विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालकर यह रोग अच्छा किया जा सकता है।

६—सब प्रकार के क्षय रोग

क्षय रोग एक ऐसी बीमारी है जो डाक्टरों को चक्कर में डाल देती है। यह जल्दी अच्छी नही होती। यह आयु और पेशे का विचार नही करती, प्रत्येक प्रकार के मनुष्यों को धर दबोचती है और उनका अन्त कर देती है।

फेफड़े का यह भयंकर रोग जितना फैल रहा है शायद उतना और कोई रोग नही फैल रहा है। इस रोग के प्रत्यक्ष लक्षण एक दूसरे से इतने भिन्न होते हैं कि दो रोगियों मे समान नहीं होते। यदि एक को दमा है तो दूसरे को सर दर्द होता है। यदि तीसरे का हाजमा खराब होता है तो चौथे को कोई लक्षण मृत्यु के १५ रोज पहिले तक नही दिखाई देता। पाँचवाँ रोगी ऐसा होता है कि पहिले उसे कुछ लक्षण नही दिखलाई पड़ता, उस पर रोग का एकदम आक्रमण होता है और वह कुछ ही दिनों में मर जाता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें वास्तव मे क्षय रोग हुआ

है किंतु वे समझते हैं कि हमारी हड्डियाँ सड़ रही हैं। बहुत से क्षय के रोगियों के आँख, कान वा कंधों में पीड़ा होती है, इसलिए वे उस क्षय को पीड़ा कहकर टाल देते हैं। प्रायः क्षय रोग में कंठ से नासिका की नालियों मे और नाक की झिल्ली मे जलन उत्पन्न होती है। कुछ क्षय रोगियों के पैर और टाँगों पर खुले घाव हो जाते हैं।

जितने क्षय रोग के रोगी होते हैं उनके मुँह अधिक या कम खुले होते हैं, रात में सोते समय वे श्वांस खीचने के लिए विशेष रूप से खुले होते हैं। इसका कारण यह है कि शरीर के भीतर अधिक गरमी होती है, इसलिए बाहरी ठंडी हवा की बार-बार उन्हे आवश्यकता पड़ती है।

ताजी और स्वच्छ हवा द्वारा शरीर के खून को साफ करना फेफड़ो का काम होता है। जब उन पर विजातीय-द्रव्य जमा हो जाता है तो वे अपना काम भलीभांति नही कर सकते। जो विजातीय-द्रव्य उनके द्वारा बाहर निकलता रहता है उनका निकलना रुकने लगता है और वह भीतर फेफड़ों पर जमा होता जाता है। उस विजातीय-द्रव्य से फेफड़ो को बड़ी हानि पहुँचती है। इसका परिणाम यह होता है कि खून बिगड़ जाता है और उसमे असाधारण गरमी पैदा हो जाती है। गरमी पैदा होने से रोगी को २४ घंटे टेम्परेचर रहता है और उसके फेफड़ों में जलन होती है और वे धीरे-धीरे जलने लगते हैं। फेफड़ों के जो भाग गल जाते हैं वे कफ के रूप में बाहर निकलते रहते हैं।

आजकल सब प्रकार के क्षय रोगो को लोग बड़ी भयानक दृष्टि से देखते हैं, और उसका देखना उचित भी है क्योकि क्षय रोग वास्तव में बड़ा भयानक है। फेफड़ों को ठोक ठोककर क्षय का पता लगाया जाता है, किंतु उस समय तक पता नहीं लगता जब तक रोग असाध्य नहीं हो जाता। ऐसे रोग वर्षों पहिले बतलाये जा सकते है किंतु शोक है कि डाक्टरों को प्रायः यह

बात नहीं मालूम होती। क्षय का टीका लगाया जाता है, फेफड़े का चीरफाड़ भी होता है किन्तु मेरी राय मे इन क्रियाओं से क्षय रोग दूर नही हो सकता।

फेफड़ों को अच्छा करने की कोई रामबाण औषधि वास्तव में नही है। हाँ जिस तरीके से वर्षों में यह रोग बढ़ा है उसी तरीके से विजातीय-द्रव्य निकालकर यह रोग जरूर अच्छा किया जा सकता है। आकृति निदान से वर्षों पहिले मालूम हो जाता है कि अमुक मनुष्य को क्षय रोग होगा और उस समय से वह रोग शीघ्र ही दूर किया जा सकता है। आकृति निदान (Facial expression) इसलिए रोगियो के लिये बड़े काम की चीज है। क्षय रोग के प्रारम्भ को रोगी नहीं महसूस करते। यदि उनसे कहो कि उनको क्षय हुआ है तो वे सहसा विश्वास भी नहीं करते। कूने साहब ने एक बार देखने में एक हट्टी-कट्टी लड़की से कहा कि देखो तुमको क्षय हो रहा हैं, मेरी चिकित्सा करो। उसने उत्तर दिया, जनाब आप क्या कहते हैं। मैं काफी चंगी हूँ। कूने साहब चुप रहे। उन्होंने उसकी मृत्यु के चार महीने पूर्व एक बार फिर चेतावनी दी, किंतु उसने कुछ भी ध्यान न दिया। ३ महीने के बाद वह बीमार पड़ी और मर गई।

अब यहाँ फेफड़ों की बीमारी का कारण बतलाना आवश्यक जान पड़ता है। फेफड़ो का रोग उन रोगों से उत्पन्न होता है जो किसी समय शरीर में उभड़े थे किंतु जो औषधियों से दबा दिये गये। फेफड़ों के रोग जननेंद्रिय सम्बन्धी रोग से भी उत्पन्न होते हैं। ये रोग प्राय: बच्चों मे उतर आते हैं। पिता-माता का विजातीय-द्रव्य बच्चे में जमा होता है और अवसर पाकर वह उभड़ता है और इस पैतृक विजातीय-द्रव्य से बच्चे को क्षय हो जाता है। वीर्य मे माता-पिता के गुण रहते हैं और वे ही बच्चों में उतरते हैं। कंठमाला के रोगियों को भी क्षय होता

है। कंठमाला की अवस्था में विजातीय-द्रव्य निकाल फेंकने की शक्ति शरीर में रहती है, किन्तु धीरे-धीरे शक्ति नष्ट हो जाती है। परन्तु कंठमाला जब सड़ जाता है तो वह क्षय में तबदील हो जाता है और उस समय इलाज करना कठिन हो जाता है। तदनुसार मनुष्य स्वांस द्वारा चाहे जितने कीड़े अन्दर भर ले किन्तु उन्हें क्षय रोग एकाएक कभी नहीं हो सकता। इन कीड़ों की वृद्धि उस समय तक नहीं होती जब तक शरीर का तापमान ऊँचा न हो। तन्दुरुस्त मनुष्य में इतना ऊँचा तापमान होना असम्भव है। हाँ नस्ल दर नस्ल जब विजातीय-द्रव्य पैतृक हो जाता है या मनुष्य अस्वाभाविक रहन-सहन और भोजन द्वारा अपना शरीर नष्ट कर लेता है तो क्षय अवश्य होता है।

सब बीमारियों की तरह क्षय की भी बीमारी पेट से उत्पन्न होती है। सबसे पहिले पाचन-शक्ति खराब होती है। अधिकतर दशाओं में पैतृक विजातीय-द्रव्य से क्षय पैदा होता है, और शायद फेफड़ों में विजातीय-द्रव्य इकट्ठा जल्द होता है। दूसरे कोठों की अपेक्षा फेफड़ों की वृद्धि शीघ्र नहीं होती, बल्कि वे नाजुक और कमजोर बने रहते है। बाहरी कीटाणुओं का सामना करने की शक्ति उनमें कमजोर होने के कारण नहीं रह जाती। विजातीय-द्रव्य उनमें इकट्ठा होने लगता है। पाचन-शक्ति खराब होने से तमाम शरीर में विजातीय-द्रव्य दौड़ता है और जहाँ उसको रोकने की ताकत नहीं मिलती, वहाँ वह जमा होने लगता है। अतएव जो जन्म से ही माता-पिता से विजातीय-द्रव्य लेकर आते हैं, उन्हें उसे जहाँ तक हो सके शीघ्र रोकना चाहिये।

गरम देश के रहने वाले बन्दरों को सर्द देश में क्षय क्यों हो जाता है, इसका भी कारण यही है कि भोजन के परिवर्तन से उनकी पाचन-शक्ति खराब हो जाती है। किन्तु लोग इसका दोष ठंढे देश की ठंढ जलवायु पर दिया करते है। इसमें इतनी

सत्यता अवश्य है कि ठंढ जलवायु से पाचन की सड़न क्रिया मन्द हो जाती है। किन्तु वास्तविक कारण यही है कि उनको अपने स्वभाव के अनुकूल भोजन नहीं मिलता। बन्दरों को गरम स्थानों से ठंडे स्थानों में रखकर प्रयोग किया गया है कि भोजन की अस्वाभाविकता से उनके हाजमे खराब हो जाते हैं। मनुष्य प्राणी के बारे में भी यही कहा जा सकता है किन्तु उस की हालत साधारणतया अधिक अच्छी है क्योंकि हम लोगों को शीतल जल और वायु के सहने का अभ्यास हो जाता है। हमें दूसरे देशों में केवल अपने भोजन और रहन-सहन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

क्षयरोगियों के शरीर में गरमी की अधिकता रहती है इस-लिए बढ़िया से बढ़िया चुनाव का भी भोजन वे हजम नहीं कर सकते। जो लोग बीमारों की सेवा शुश्रूषा करते है उन्हें मालूम है कि भिन्न-भिन्न शरीरो मे पाचन में कितनी भिन्नता होती है। यदि फेफड़ों में विजातीय-द्रव्य भर गया है तो उसको विशेष हानि पहुँचने की संभावना होती है। क्योंकि वे स्थान घेरते हैं और विजातीय-द्रव्य को फेफड़ों में होकर सर की ओर जाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त एक बार फेफड़े जब विजातीय-द्रव्य से लद जाते है तो विजातीय-द्रव्य उन्ही पर और अधिक जाता है, वह सर की ओर नहीं जाता।

जब फेफड़ों में सड़न शुरू हो जाती है तो उसके सिर पहिले खराब होते हैं। इसका कारण यह है कि विजातीय-द्रव्य अपने उफान में सिरो की ओर उठता है। फेफड़ां के सिरे कन्धो में समाप्त होते हैं,इसलिए जब उफान शुरू होता है तो उफना हुआ विजातीय-द्रव्य सिरे की ओर चलता है और कन्धे उसे ऊपर जाने से रोकते है, इसलिए इन्हीं सिरो को पहिले बड़ी हानि पहुँचती है। कंधो मे भी दर्द होने का यही कारण है। फेफड़ों के

खराब होने के पहिले क्षय रोग के रोगी इस कन्धे के दर्द का अनुभव करते हैं।

क्षय रोग की गुमड़ियों का असली कारण अब बतलाने की आवश्यकता है। ये गुमड़ियाँ ठीक उसी प्रकार बनती हैं जिस प्रकार बवासीर के मस्से और सरतान की गुमड़ियाँ या बिल्कुल छोटी-छोटी फुन्सियाँ। स्वस्थ पुरुष की त्वचा नरम होती है और दीर्घकालीन रोगी की शुष्क। नर्म त्वचा में विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालने की शक्ति होती है, किन्तु शुष्क त्वचा से विजातीय-द्रव्य केवल बाहर नहीं निकलता, यही नहीं किन्तु वह जमता जाता है और उसमें रोग उत्पन्न होने की संभावना बढ़ती जाती है। आपने देखा होगा कि बहुतों को नियत समय पर चूतड़, गरदन या भुजाओं पर फोड़े निकलते हैं। ऐसे रोगी के शरीर में एक बोझा ऐसा ऐसा मालूम होता रहता है जो फोड़ों के फूटने से हलका हो जाता है। ये फोड़े क्यों निकलते हैं। जहाँ पर फोड़ा निकलने को होता है वह स्थान हमे पहिले से मालूम हो जाता है। वह लाल और सख्त हो जाता है। धीरे २ वह फूल जाता है और फोड़ा बन जाता है और उसमें दर्द होने लगता है। छूने से उसमे अधिक दर्द होता है। धीरे-धीरे वह फूट जाता है और मवाद निकलकर बाहर आ जाता है। इस प्रकार जिस विजातीय-द्रव्य से वह फोड़ा बनता है वह बाहर निकल जाता है। फोड़ा केवल एक साधन है जिनके द्वारा शरीर विजातीय-द्रव्य निकालता रहता है। प्रश्न हो सकता है कि हर एक पुरुष के फोड़े क्यों नहीं निकलते। जिन लोगों के पसीना बराबर निकलता रहता है या जिनके पाखाना-पेशाब ठीक रूप में होता है उनके शरीर से विजातीय-द्रव्य निकल जाता है, इसलिए उनको फोड़े नहीं निकलते। किन्तु जिनको पसीना नहीं आता

उनको प्राय: फोड़े निकलते हैं। यदि मनुष्य की त्वचा दवाओं के खाने से बिलकुल निर्जीव हो जाती है तो फोड़े भी नहीं निकलते। उनके स्थान मे जगह-जगह विजातीय-द्रव्य के कड़े स्थान त्वचा मे बनते है और इन्हीं को गुमड़ियाँ कहते हैं। गुमड़ी को एक कच्चा फोड़ा कह सकते हैं या एक छोटी थैली जिसमें विजातीय-द्रव्य भर गया है। ऐसी-ऐसी बहुत सी गुमड़ियाँ गरदन, या शरीर के अन्य भागों मे देखने में आती है। जब मनुष्य में शक्ति नहीं रह जाती तो ये गुमड़ियाँ शरीर के भीतर बनने लगती हैं और लोग इन्हें बवासीर के मस्से, विस्फोटक इत्यादि के नाम से पुकारते हैं। यदि हम शरीर की शक्ति किसी तरह बढ़ा दें तो इन गुमड़ियों में अन्तर पड़ जाता है। ऐसा प्राय: देखा जाता है कि जल-चिकित्सा करते समय ऐसे कभी बहुत से फोड़े निकल आते हैं। ऐसा होने से शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है और जो क्रियायें बन्द हो गई थीं वे फिर चालू होने लगती है। यदि शरीर की शक्ति जल-चिकित्सा से और भी अधिक बढ़ा दी जाय तो तमाम गुमड़ियाँ एक दम बैठ जाती है। इस प्रकार एक बार जब विजातीय-द्रव्य बाहर निकाल दिया जाय और स्वाभाविक भोजन और रहन-सहन द्वारा फिर शरीर मे विजातीय-द्रव्य न भरा जाय तो फिर न तो फोड़े निकल सकते है और न गुमड़ियाँ ही निकल सकती है। बस हम देखते है कि जिस प्रकार शरीर के अन्य भाग की गुमड़ियाँ बनती हैं उसी प्रकार क्षयी की भी गुमड़ियाँ बनती हैं।

जब गुमड़ियों के बनने का कारण मालूम हो गया तो उनके नष्ट करने की भी व्यवस्था बहुत आसानी से मालूम हो सकती है। गुमड़ियों में नश्तर लगवाना बड़ा भयानक है। संभव है गुमड़ियाँ शरीर में न दिखलाई दें किंतु उसकी जड़ नहीं जाती।

गुमड़ी के नष्ट करने का सबसे सरल उपाय जल-चिकित्सा द्वारा शरीर की शक्ति बढ़ाना है जिससे विजतीय-द्रव्य बाहर निकलता है। यह बात दावे के साथ कही जा सकती कि क्षय की गुमड़ियाँ जल-चिकित्सा द्वारा अवश्य नष्ट हो जाती हैं। यद्यपि कुछ रोगियों को उन्हें दूर करने के लिए कई वर्ष जल-चिकित्सा करनी पड़ती है।

विजातीय द्रव्य में जब उफान आता है तो वह एक ही ओर नहीं आता है। अतएव कभी तो ऐसा होता है कि फेफड़ों के सिरे बिकारपूर्ण होते हैं और कभी ऐसा होता है कि फेफड़ों के बीच के हिस्से बिकारपूर्ण होते हैं जिससे खांसी उठती है और श्वांस की नली में सूजन और जलन उत्पन्न होती है। वास्तव में क्षयी के रोगियों को श्वांसनली की जलन से अधिक पीड़ित होना पड़ता है।

फेफड़ों और उनकी झिल्ली का सूजन

फेफड़े और उनकी झिल्ली में सूजन उस समय उत्पन्न होती है जब प्राचीन संचित विजातीय द्रव्य का उफान होता है और उसकी उचित चिकित्सा नहीं की जाती। यदि शुरू में यह उफान रोक दिया जाय तो मनुष्य सूजन की अवस्था तक पहुँच ही नहीं सकता है। ठंढे पानी के स्थानों मे यह शक्ति है कि वह फेफड़ों में कोई विकार रहने न दे और उनको पूर्ण स्वस्थ रक्खे।

एक बार कूने साहब ६ वर्ष की एक कन्या की चिकित्सा करने के लिए गये, जिसके फेफड़ो में सूजन आ गई थी। एक डाक्टर साहब का दो महीनों से इलाज हो रहा था। उससे कोई लाभ नहीं हुआ था बल्कि उस दवा से लड़की का हाजमा खराब हो गया था। लड़की के माता-पिता अपनी कन्या से एक दम निराश हो चुके थे। कुने साहब ने डाक्टरी इलाज छुड़ाकर अपना इलाज करना शुरू किया। कुछ सप्ताहों के स्नानों से वह

लड़की चंगी हो गई। यदि शुरू से उस लड़की को जल-चिकित्सा करवाया गया होता तो उसे इतने समय तक क्यों परेशान होना पड़ता।

फेफड़ों के तमाम रोगों में भीतर ऊँचे दरजे की गरमी रहती है। श्वांश लेते और निकालते समय वायु के भागों को अलग-अलग कर देने वाली एक क्रिया उत्पन्न होती है। जिस समय हम सांस लेते हैं उस समय हमारे फेफड़े हवा को आक्सीजन और नाइट्रोजन दो भागों में बाँट देते हैं। आक्सीजन भीतर रह जाता है और नाइट्रोजन शरीर की खराबियों के साथ बाहर निकल आता है। इस प्रकार फ़ेफड़ों में अलग करने की क्रिया (जिसका परिणाम जलन होता है) बराबर चलती रहती है जिससे ऊँचे दरजे की गरमी पैदा होती है। यह गरमी फेफड़ों में वहाँ अधिक बढ़ जाती है जहाँ विजातीय-द्रव्य का उफान अधिक होता है।

शरीर के भीतर कीड़ों की उत्पत्ति उस विजातीय-द्रव्य से होती है जो उफान खाता रहता है। ये कीड़े गरमी से बढ़ते है। क्षय में भीतरी गरमी विशेष रहती है इसलिए इस रोग में कीड़ों की वृद्धि करने की काफी सामग्री रहती है। डाक्टर कीड़ों की इस वृद्धि को भलीभाँति मानते है किन्तु अपने ज्ञान को वे काम में नहीं लाते। वे कीड़ों को नष्ट करने के लिए खूब प्रयत्न करते है किन्तु उनकी जड़ में नहीं पहुँचते। इसलिए वे असफल रहते हैं।

डाक्टरी मे यह बतलाया जाता है कि हर एक रोग के कुछ कीड़े होते हैं जिनके कारण यह रोग उत्पन्न होता है। वे इस बात को भूल जाते है कि एक ही प्रकार के पत्ती और एक ही प्रकार के वृक्ष भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पर रखते हैं। इसी

प्रकार सब रोगो के कीड़े भी रूप और परिणाम में भिन्न-भिन्न देशों की गरमी पर निर्भर रहते हैं।

जिस पुरुष ने उपरोक्त कथन को समझ लिया है वह क्षय रोग की चिकित्सा बड़ी आसानी से कर सकता है। भीतर का टेम्परेचर नार्मल हो जाना चाहिए और शरीर की शक्ति बढ़ाना चाहिए और शरीर की असाधारण दशायें दूर करनी चाहिए। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये जल-चिकित्सा के स्नान करना चाहिए और भोजन पर पूरा संयम रखना चाहिए। स्नान कितने समय के और कितनी वार करना चाहिए इस पर पूरा ध्यान रखना चाहिए। क्षय रोग मे शरीर के भीतर प्रचंड गर्मी रहती है और वह जल्दी नहीं घटती, इसलिए रोगी की शक्ति के अनुसार अधिक समय के बाथ और गिनती में भी अधिक लेने की आवश्यकता है। इस विषय में उन लोगों की राय लेनी चाहिए जिनको जल-चिकित्सा का कई वर्षों का अनुभव है। रोगी को प्रचुर धूप और प्रचुर हवा मे रखने की आवश्यकता है। क्षय रोग में धूप स्नानों से वहुत लाभ होता है।

क्षय रोग मे डाक्टर लोग (Tuber culin) टीका देते हैं। इससे हानि होती है। विषैला-द्रव्य जिससे टीका लगाया जाता है, विजातीय-द्रव्य पर गुंधे आटे पर खमीर की तरह प्रभाव डालता है और ज्वर उत्पन्न करता है। इससे विजातीय-द्रव्य की वास्तविक उफान की दशा में परिवर्तन हो जाता है और साथ ही शरीर की गर्मी में भी परिवर्तन होता है। इसका यह परिणाम होता है कि क्षय के कीड़े जो बढ़ते थे अब और भी अधिक तादाद में बढ़ने लगते है। दशा और भी खराब होती जाती है। न तो शरीर से विजातीय-द्रव्य बाहर निकलता है और न बीमारी ही कम होती है। टीका एक अधूरी औषधि है और अधूरी हमेशा रहेगी। उसका भयानक हानिकारक परिणाम आगे या पीछे

शरीर पर अवश्य होता है। कुछ महीनों के पश्चात् टीके से जो खुशी हुई थी उसके स्थान में निराशा और दुख होने लगते हैं। चारों ओर से टीका के खिलाफ अब लोग बोलने लगे हैं। आज-कल टीका लगाने की अब कुछ भी दिलचस्पी नहीं रह गयी;

जल-चिकित्सा से क्षय रोग अच्छा हो सकता है। सम्भव है जब रोग हाथ से निकल जाय और उस समय जल चिकित्सा की जाय तो लाभ न हो। यदि रोगी में शक्ति बाकी है, यदि उसका हाजमा एकदम नष्ट नहीं हो गया है तो वह अच्छा हो सकता है। यदि हाजमे मे चिकित्सा से अन्तर पड़ता गया तो रोगी चंगा हो जायगा नहीं तो न होगा। कूने साहब ने सैकड़ो क्षयी रोग के रोगियों को चंगा किया है जिनका हाजमा धीरे-धीरे सुधरने लगा था। कुछ क्षय के रोग इतने कठिन होते हैं कि बहुत समय तक कुछ लाभ नही होता, किन्तु फिर लाभ एक दम होने लगता है।

यदि शरीर मजबूत है तो फेफड़ों और पेड़ू से विजातीय-द्रव्य निकलने के लिये सेहन स्नान सबसे उत्तम है। कभी-कभी स्टीम बाथ या सन बाथ भी लेते रहना चाहिए। अच्छी हवा में रहना चाहिए और स्वाभाविक आहार पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

जिन रोगियों का क्षय अत्यन्त भयकर हो गया हो उनके लिये ये स्नान अत्यन्त तीव्र होंगे। इसलिए उनको हल्के हिप बाथ लेना चाहिए। पानी का तापमान ८१ से ८६ फैरनहाइट होना चाहिए और कन्धों तक पहुँचना चाहिए। शुरू में पाँच मिनट और इसके बाद जितनी देर तक उसे अच्छा लगे उतनी देर स्नान करना उचित है। एक दिन में कई बार स्नान लेना चाहिए। जब शरीर मजबूत हो जाय तब सिट्ज बाथ लेना चाहिए। बहुत दशाओं मे जीवन-शक्ति की कमी के कारण

लाभ कम पहुँचेगा किन्तु लगातार स्नान करने से हालत जरूर अच्छी होगी। यदि पाचन-शक्ति मे उन्नति हुई तो रोग अवश्य अच्छा हो जायगा।

दमा (Asthma)—६५ वर्ष की एक स्त्री को बड़ा भयङ्कर दमा हुआ। वह एक डाक्टर की दवा करती रही जिससे उसका हाज़मा खराब हो गया। उससे कहा गया कि तुमको कोई औषधि लाभ नहीं पहुँचा सकती, इसलिए जरमनी के दक्षिण प्रदेशों मे रहो। रोगी दस कदम भी नहीं चल सकता था। उसने जल-चिकित्सा का नाम कहीं सुन लिया था इसलिए उसने डाक्टर से कहा कि मै यही मर जाना पसन्द करूँगी लेकिन दूसरे प्रदेशो को नही जाऊँगी। वह लुई कुने साहब के सुपुर्द की गई। उसने उनके कहने के अनुसार चिकित्सा करना प्रारम्भ किया। उसकी पाचन-शक्ति धीरे-धीरे अच्छी होने लगी। विजातीय-द्रव्य काफी तादाद मे पसीने और मल-मूत्र के रूप मे बाहर निकला। रोगी को ठंडे स्नान दिये जाते थे और कभी-कभी स्टीम बाथ। एक महीने मे रोगी की दशा बदल गई। तीन महीने में वह अच्छी हो गई।

इसी प्रकार ६० वर्ष के एक सज्जन को दमा हुआ। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। उसने तब कूने साहब की चिकित्सा की। स्नानो से उसे रोग में कमी मालूम होने लगी। अतएव वह बड़े चाव से स्नान करने लगा। वह रात को भी उठकर कभी-कभी स्नान ले लेता था क्योंकि उसे रात में नींद नहीं आती थी। स्नान के बाद वह कुछ देर तक के लिए सो जाता था। स्नानों से उसका बलगम काफी तादाद में निकलने लगा। हर महीने उसकी दशा सुधरती गई। एक वर्ष में वह अच्छा हो गया। और उसकी गञ्जी खोपड़ी में बाल भी निकल आये।

बढ़ा हुआ क्षय रोग

बढ़े हुए क्षय रोग से पीड़ित ३० वर्ष की एक स्त्री ने कूने साहब की चिकित्सा शुरू की। सोते समय वह मुँह से सांस लेती थी। उसकी माँ क्षय रोग से ४५ वर्ष की अवस्था में मर चुकी थी। २० वर्ष की अवस्था से लड़की को क्षय के चिह्न दिखलाई देते थे। ३० वर्ष की अवस्था में उसके चेहरे की लालिमा गायब हो गई थी। उसका हाजमा खराब होता गया और पाखाने से दुर्गन्धि निकलने लगी। उसके सर और दाँतों में दर्द होने लगा। और छाती और कंधों में भी दर्द पैदा हुआ। उसे मासिक धर्म भी कभी कई महीनों में होता था और कभी बहुत जल्दी जल्दी। कूने साहब ने उसकी चिकित्सा शुरू की। उसे ठंढे स्नान और स्टीम बाथ बतलाये गये और खुली हवा में रहने को कहा गया। इन साधनों से ६ महीनों के भीतर उसकी दशा सुधर गई और अब वह आनन्द से घूमने फिरने लगी। सर का दर्द एकदम गायब हो गया और पाचन-शक्ति बढ़ गई। वर्ष के भीतर उसको दो बार संकट के समय (Crisis) आये जिससे उसको काफी आराम हुआ। दूसरे वर्ष कुछ संकट के दो अवसर और आये और उसके बाद वह चंगी हो गई।

क्षय (Tuber Culosis)—४० वर्ष के एक सज्जन को क्षय रोग हुआ। डाक्टरों ने उसे दक्षिण इटली में रहने का आदेश किया। रोगी कूने साहब से मिला और उनकी चिकित्सा उस ने शुरू की। चार सप्ताह की चिकित्सा से उसका स्वास्थ्य सुधरने लगा। मूत्राशय और अँतड़ियों की जलन उसे शुरू हुई जिनसे ६ वर्ष पहिले वह पीड़ित हो चुका था। १५ दिनों में वे बीमारियाँ दब गईं। स्नानों से शरीर की दशा सुधरती गई। उसे सुजाक भी था, जो दो सप्ताहों में अच्छा हो गया। फेफड़े बराबर अच्छे होते गए। १६ वर्ष में वह बिलकुल चंगा हो गया।

हड्डियों पर गुमड़ियाँ पड़ जाना और उनका सड़ना

उपरोक्त बीमारियों से पीड़ित बहुत से रोगी जल-चिकित्सा से आराम हुए हैं। इन रोगियों को बाल्यावस्था में रिकेट (Ricket) (हड्डियों का टेढ़ा होना) की बीमारी हो चुकी थी। उनकी हड्डियाँ बड़े होने पर भी कमजोर थीं। और टूट गई थीं। युवावस्था में हड्डियाँ घुलने लगीं। टाँगों और बाजुओं की हड्डियों मे मवाद आ गया था और स्पंज की तरह वे सूज गई थीं। कुछ रोगियों की भुजायें और टाँगे काट डाली गई थीं और लुई कूने के पास जाने के पहिले बहुतों की दशा असाध्य हो गई थी। जल-चिकित्सा शुरू करते ही पुरानी बीमारियाँ उभड़ने लगीं। वे सब समय से अच्छी हो गयीं।

एक लड़का कूने साहब के पास जल-चिकित्सा के लिए गया जिसके पैर के सामने की हड्डियाँ घुटने से टखने तक खुली हुई थीं और उनमें से मवाद बह रहा था। डाक्टरों ने दोनों टांगों को काटने का विचार किया किन्तु उनके माता-पिता ने इस बात को स्वीकार न किया। वे उसे कूने साहब के पास ले गये। चार सप्ताह के बाद लाभ होने लगा। घाव भीतर से भरने लगे और ऊपर त्वचा भी दुरुस्त होने लगी। ६ महीनों में दोनों पैर भर गये और दो महीने और चिकित्सा करने से वह चङ्गा हो गया।

१० वर्ष के एक बच्चे के घुटने में एक गुमड़ी पड़ गई। घुटने को काटने की सलाह दी गई। उसने जल-चिकित्सा आरम्भ किया। नौ महीने मे उसका रोग अच्छा हो गया और उसके बाद ३ महीनों में वह बिल्कुल चङ्गा हो गया।

ल्यूपस (Lupus)—४१ वर्ष की एक स्त्री थी। उसको मुख के ल्यूपस का रोग हो गया। ३० वर्ष तक वह इस रोग से पीड़ित रही और उसे कोई लाभ न हुआ। उसका चेहरा भयावह

मालूम होता था। जिधर से वह निकल जाती थी उधर के लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। वह कूने साहब के पास गई। और उन्हीं का इलाज उसने शुरू किया। उन्होंने चेहरे को देखकर बतलाया कि मैं आपको अच्छा कर सकता हूँ। १५ रोज में उसके चेहरे का रङ्ग बदलने लगा। उसकी पाचन-शक्ति सुधरती गई। पाखाने और पेशाब के रास्ते विजातीय द्रव्य निकलने लगा। ७ सप्ताहों में रोगी की त्वचा भी ठीक हो गई। विजातीय-द्रव्य शरीर के सामने के भाग में था। इसलिए वह जल्दी अच्छी हो गई। यदि विजातीय-द्रव्य पीछे के भाग में होता तो उतनी जल्दी अच्छा होना कठिन था।

बहुत से रोगियों को दो-चार सप्ताह में फायदा नहीं मालूम होता, इसलिए वे चिकित्सा यह कहकर छोड़ देते हैं कि इससे कोई लाभ नहीं हो रहा है। वे नहीं समझते कि उनका रोग इतना भयङ्कर है कि चंगा होने के लिए उनको अधिक समय की आवश्यकता है। ऐसे रोगियों को धैर्य की जरूरत है।

एक स्त्री मुख के ल्यूपस से पीड़ित थी। वह मुँह पर परदा डालकर बाहर निकलती थी। १५ वर्ष तक वह इस रोग से पीड़ित रही। उसने अनेक दवायें कीं किन्तु किसी से कुछ लाभ न हुआ। वह कूने साहब के पास गई और उनकी चिकित्सा उसने प्रारम्भ किया। रोग धीरे-धीरे अच्छा होने लगा और शीघ्र वह चङ्गी हो गई।

७—रीढ़ की हड्डी का रोग और बवासीर

कई वर्षों तक लगातार बीमारी से रीढ़ की हड्डी का रोग उत्पन्न होता है। यह रगों में विजातीय-द्रव्य भर जाने से होता है। इस रोग में स्वप्नदोष बहुत होते हैं। रीढ़ की रगें फूल जाती हैं और उन पर से मनुष्य का अधिकार लुप्त होता जाता है। सबसे पहले उसके पाँव उसको जवाब दे देते हैं। कमर

के समीप का हिस्सा जकड़ जाता है और वहाँ एक प्रकार की शीत पैदा हो जाती है। रोग के बढ़ने पर कटिभाग में एक वेदना उत्पन्न होती है। यह बड़ी दुखदाई होती है।

रीढ़ की हड्डी का रोग जब बढ़ जाता है तो उसका अच्छा होना कठिन है। जहाँ तक हो सके बीमारी के प्रारम्भ में ही चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिए। जिस मकान में आग लगे तो उसको शुरू में बुझाना सरल है किन्तु आग जब बढ़ जाती है तो उसका बुझाना असम्भव है।

एक नौजवान की रीढ़ की हड्डी का रोग हुआ। उसकी दोनों टाँगें सुन्न पड़ गईं। वह बहुत दिन तक इलाज करता रहा किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। उसका हाजमा बिगड़ चुका था। पेशाब छूट पड़ता था। उसका उठना-बैठना मुश्किल था। संयोगवश लोग उसे कूने साहब के पास ले गये। उन्होंने उसका इलाज करना शुरू किया। प्रारम्भ में उसे चार स्नान कराये गये और सूखा स्वाभाविक भोजन दिया गया। दो महीने में दशा कुछ सुधरने लगी और वह कुछ देर तक स्वयं खड़ा होने लगा। नौ महीने में वह कमरे में इधर-उधर टहलने लगा। दो महीने बाद वह अच्छा हो गया। इस रोगी ने लगकर अक्षरशः कूने साहब के आदेशों का पालन किया और इसीलिए वह अच्छा हो सका।

बवासीर की पीड़ा

मेरुदण्ड की बीमारी और पीठ के हिस्से पर विजातीय-द्रव्य के संचित होने से यह रोग उत्पन्न होता है। बवासीर एक प्राचीन रोग का सूचक होती है जो पेड़ की खराबी से पैदा होता है। बवासीर के रोगियों की पाचन-शक्ति भी कमजोर होती है।

१७ वर्ष के एक नौजवान को बवासीर हुई। वह कूने साहब के पास इलाज के लिये गया। उसके सर के पीछे गुमड़ियाँ पड़ गई थीं और उसका सर विजातीय-द्रव्य के कारण कुछ बड़ा हो

गया था। उसके सिर में बराबर पीड़ा हो रही थी। वह जवान छटपटा रहा था। कूने साहब ने उसका इलाज करना शुरू किया। उसको ठंढे स्नान कराये गये और स्वाभाविक भोजन खाने को दिया। पहले सप्ताह में उसके सर का दर्द दूर हुआ। गुमुड़ियाँ भी कम हुईं और पाचन-शक्ति सुधरने लगी। दूसरे महीने में गुमुड़ियाँ जाती रहीं और उसका सर छोटा हो गया ६ महीने में उसकी दशा बहुत कुछ सुधर गई।

८—हृदय के रोग और जलन्दर

यदि हम पक्षपात छोड़कर हृदय की रोगों की खोज करें तो हमें मालूम होगा कि ये रोग भी विजातीय द्रव्य के भार से उत्पन्न होते हैं। इसलिए इन रोगों को भिन्न-भिन्न भागों में विभाजित करना बिल्कुल निरर्थक है। यदि विजातीय-द्रव्य बाईं ओर है तो बाईं ओर में विजातीय-द्रव्य की अपेक्षा रोग के बढ़ने की अधिक सम्भावना होती है।

जब हृदय मे विजातीय-द्रव्य का भार होता है तो सारे शरीर में भी विजातीय-द्रव्य के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं। इस रोग मे सारा शरीर चरबी से भर जाता है और हृदय की रगें विजातीय-द्रव्य से इस कदर मोटी पड़ जाती हैं कि वे अपना साधारण काम भी करने मे असमर्थ होती हैं। हर एक मनुष्य को मालूम है कि जब शरीर मे सूजन होती है तो शरीर के पीड़ा मे रुकावट पड़ती है। इसी प्रकार हृदय के पट्ठों मे विजातीय-द्रव्य के कारण जब तनाव हो जाता है तो उसकी चाल अनियमित हो जाती है। जब हमको किसी आपत्ति का धक्का लगता है, या शारीरिक परिश्रम अधिक करना पड़ता है, जिससे हृदय की ओर रुधिर का प्रवाह अधिक होने लगे तो उस समय हम को फौरन मालूम होता है कि हृदय पूर्ण रीति से

अपना काम नहीं करता। उस समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे विजातीय-द्रव्य हृदय पर दबाव डाल रहा हो।

यदि हृदय के रोग का असली कारण दूर न किया गया या दवाओं के सेवन से विषैला पदार्थ शरीर में और अधिक भर गया तो रोगी की हालत और भी अधिक खराब हो जाती है और उसको जलोदर (Dropsy) रोग हो जाता है। जलोदर रोग मे जो पानी शरीर में मिलता है वह वास्तव में विजातीय-द्रव्य ही है। इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि शरीर में शुद्ध रक्त उत्पन्न होने की शक्ति नहीं रहती। वह रस जो रुधिर को उत्पन्न करते हैं विकृत पदार्थ के मौजूद रहने से अपने रूप को बदल देते हैं।

जलोदर रोग का एक रोगी एक बार कूने साहब के पास गया। उसका शरीर जल से भरा हुआ था और वह रबड़ के सदृश फूला हुआ प्रतीत होता था। पानी का भीतरी दबाव इतना अधिक था कि टॉगो की त्वचा से जल उछला पड़ता था। जहाँ रोगी बैठता था वह पानी से तर हो जाता था। रोगी एक मक्खन बेचनेवाला मनुष्य था। उसे मक्खन को कई श्रेणियो मे रखने के लिए प्रतिदिन बहुत-सा मक्खन चखना पड़ता था। टांगों से जो पानी निकलता था उसमे मक्खन की महक प्रत्यक्ष मालूम होती थी। मक्खन खाते-खाते उसका मेदा कमजोर हो गया और उसके शरीर मे रोग उत्पन्न होता गया। मक्खन अधपचा रह जाता था जिससे कि वह विजातीय-द्रव्य उत्पन्न करने लगा। वह आदमी बाई करवट सोने का अभ्यासी था अतः मक्खन उसी ओर इकट्ठा होने लगा। धीरे-धीरे हृदय के अन्दर और सारे शरीर मे मेद (fat) बढ़ गया। प्रारम्भ मे उसको हृदय की बीमारी हुई। और उसके बाद उसको जलोदर हो गया। उसने अनेक औषधियाँ की किन्तु उससे कोई लाभ

नहीं हुआ। कूने साहब ने उसको ठंडा स्नान और स्वाभाविक रहन-सहन बतलाया। किन्तु वह उनके आदेशों के अनुसार चल न सका जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

शरीर में जल-इकट्ठा होने का कारण पेड़ू मे एक प्रकार की सड़ी हुई दशा का हो जाना है। यह दशा में इतनी धीरे-धीरे प्राप्त हो जाती है कि रोगी को मालूम तक नही पड़ता। जब रोगी को साँस लेने मे कठिनाई होती है या उसे हृदय की पीड़ा होती है तब वह इस रोग का अनुभव करता है।

एक रोगी को बहुत दिनों से जलोदर रोग हो गया। उसकी दशा बड़ी शोचनीय थी। वह कूने साहब के पास गया और उनके परामर्श से जल-चिकित्सा करने लगा। सप्ताह में पानी सूख गया और उसको शरीर के अन्दर गर्मी मालूम पड़ने लगी। चौथे सप्ताह मे उसको बहुत से दस्त होने लगे जिससे बड़ी दुर्गंधि निकलती थी। यह दशा तीन दिन तक कायम रही। थोड़े सप्ताह के बाद वह एक दम चङ्गा हो गया।

जलोदर का रोगी उसी हालत मे अच्छा हो सकता है जब वह ठीक नियम के अनुसार जल-चिकित्सा करे और बिना किसी मदद के उसको पसीना निकले। उस समय विजातीय-द्रव्य के निकलने की और पाचन-शक्ति के सुधरने की सम्भावना हो सकती है। यदि शरीर की शक्ति एक दम निकल गई या पाचन-शक्ति बिलकुल ही खराब हो गई तो यह रोग नही अच्छा हो सकता।

६—मूत्राशय और गुर्दों के रोग

सम्पूर्ण रोगों की जड़ शरीर के अन्दर विजातीय-द्रव्य का इकट्ठा होना है। बहुत सी ऐसी हवाये (gases) है जो मेदे मे पाचन-क्रिया के समय पैदा होती है। यह हवाये एक ओर तो भोजन को मेदे से आगे बढ़ाती हैं और दूसरी ओर वे पाचन-

क्रिया की नाली की दीवारों से निकलकर सारे शरीर और रुधिर में मिल जाती हैं। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो सकती है। जल पृथ्वी पर समुद्र, झीलो और नदियो में होता है। मानों वह पृथ्वी पर जल की नालियाँ है जो मनुष्य के देह के भीतर रुधिर के नालियो के समान हैं। पृथ्वी पर इतना पानी होते हुए भी जल भाप के रूप में सम्पूर्ण वायु मे और पृथ्वी के अन्य भागो मे भरा हुआ है। इसी प्रकार यद्यपि भोजन खाये जाते हैं और जल पिया जाता है किन्तु वायु-रूप में वे सम्पूर्ण शरीर में भरे हुए हैं। इसी कारण जब हम मदिरा पीते है तो उसका प्रभाव सारे शरीर पर और सर मे विशेष रूप से मालूम होता है। इस शराब की बहुत सी हवायें त्वचा के द्वारा बाहर निकल जाती हैं। जिसके शरीर मे अधिक विजातीय-द्रव्य है उसकी हवाओं मे बड़ी दुर्गन्धि होती है। नीरोग मनुष्य के पसीने मे बुरा प्रभाव उत्पन्न करने वाली कोई बात नहीं रहती।

शरीर के भीतर यह हवायें गुर्दों के द्वारा भी जाती हैं। गुर्दे उनमे जल मिलाकर मूत्राशय में पहुँचाते हैं। जब मूत्राशय भर जाता है तो पेशाब करने की इच्छा होती है। जब इच्छा हो तो पेशाब उसी समय करना चाहिए नहीं तो बड़ी हानि होती है। सभ्य-समाजों मे बैठे हुए लोग पेशाब रोक लेते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि जो विजातीय-द्रव्य शरीर के बाहर निकलना चाहिए वह गुर्दों और मूत्राशय में रुक जाता है। यदि मूत्राशय से पेशाब न निकाला गया तो उसमे जोश उत्पन्न हो जाता है। मूत्राशय मे गरमी अधिक उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण मूत्र का पतला भाग उड़ जाता है और उसमें का नमक शेष रह जाता है। ऐसा होते होते गुर्दों की पृथक की हुई वस्तुएँ मूत्राशय में जाने से रुक जाती है और इसी प्रकार

के परिवर्तन गुर्दों में भी होने लगते हैं। प्राय: हम देखते हैं कि एक बार पेशाब करने की इच्छा हम रोक देते हैं तो दूसरी बार जब हम पेशाब करना चाहते हैं तो पेशाब नहीं निकलता। वह पेशाब अवश्य शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में चला जाता है। उसमें का एक हिस्सा उबाल के कारण गैस बन जाता है और खून में मिल जाता है। द्रव पदार्थ छोटे-छोटे टुकड़ों मे गुर्दों और मूत्राशय में जमा होते रहते है। इससे एक रोग उत्पन्न होता है जिसे पथरी कहते हैं।

पथरी—

पथरी का एक कारण बतलाया जा चुका। इसका दूसरा कारण अस्वाभाविक भोजन है। पेशाब जो गुर्दों में रुकता है वह भाप बनकर उड़ जाता है और छोटे-छोटे चमकदार टुकड़े आपस मे मिलते जाते हैं। जब तक वे छोटे होते हैं तो वे गुर्दों के नालियो के द्वारा पेशाब के साथ बिना किसी कष्ट के मूत्राशय में चले जाते है किन्तु वे जब बड़े हो जाते हैं तो मूत्राशय मे जाते समय पीड़ा उत्पन्न करते हैं। इनसे नालियों के झिल्ली को हानि पहुँचती है, यही हालत मूत्राशय की भी होती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मूत्र के रुकने से पथरी नहीं पड़ती। सारा पेशाब भाप बनकर शरीर में मिल जाता है जैसे गुमुड़ियाँ आदि।

पेचिस और कब्ज

पेचिस वा कब्ज भी विजातीय-द्रव्य से उत्पन्न होता है। इस हालत में पेशाब की वही दशा होती है। अन्तर केवल इतना होता है कि रुकावट प्रत्यक्ष रूप में नहीं होती किन्तु अप्रत्यक्ष रूप मे अर्थात् त्वचा के असाधारण रंग से, गुमरी से, सिर की पीड़ा से, रसौली से, पथरी से, इत्यादि रोग से मालूम होता है।

बहुमूत्रता

यह रोग आँव से बहुत मिलता-जुलता है और प्रत्यक्ष रूप मे दिखलाई पड़ता है। इस रोग में भीतरी ज्वर के कारण जलन पैदा होती है और व्याकुल करनेवाली प्यास भी लगती है। इस रोग में न तो कब्ज होता है और न पथरी या रसौली बनती है किन्तु विजातीय-द्रव्य शीघ्रता से निकलता है और आमाशय के अनेक प्रकार के रसो मे सड़न पैदा होती है। पेशाब शरीर से जोश खाया हुआ गन्दी और मीठी शकल में बाहर निकलता है। पथरी और बहुमूत्रता वास्तव में एक ही है केवल बाहरी चिन्हो मे अन्तर होता है। इस रोग को जल-चिकित्सा से बहुत लाभ होता है।

जिस प्रकार जल-चिकित्सा से बहुमूत्रता को लाभ होता है उसी प्रकार पथरी को भी पहुँचता है। पथरी के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और रोगी को पेशाव बहुत तादाद में होता है जिसे देख कर उसे आश्चर्य होता है। इसका उत्तर बहुत ही सरल है। पेशाब जो पहले भाप के रूप में शरीर भर मे व्याप्त था, वह अपने पुराने मार्ग द्वारा पूर्व स्थान में फिर वापस आता है और शरीर से मूत्र के रूप मे निकलता है।

पथरी की तरह मूत्र-प्रवाह (Bedwetting) अर्थात् मूत्र का न रुकना, आँख की जलन, मूत्राशय की जलन आदि रोग जल-चिकित्सा से बहुत जल्द आराम होता है।

यकृत रोग, जिगर की पथरियाँ और पाण्डु रोग

ये रोग शरीर के दाहिने ओर विजातीय-द्रव्य के जमा होने से उत्पन्न होते हैं। ऐसे रोगियों का पसीना दुर्गन्ध-युक्त होता है और उनके तलुवे पसीजने रहते हैं। त्वचा का रंग काला पड़ जाता है। जब बीमारी बढ़ जाती है तो पसीने का निकलना

बन्द हो जाता है। उस दशा में रोगी की हालत खराब होती जाती है। कारण इसका यह है कि जो पसीना त्वचा से निकलता था वह शरीर के अन्दर ही रह जाता है और उससे सरतान आदि भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं। बहुत से लोग तलुवे के पसीने को बन्द करने की कोशिश करते हैं, इससे बड़ी हानि होती है। पसीने का रोकना दवा के द्वारा उतना भी भयानक है जितका भयानक किसी बड़े नगर के बड़े गंदे नाले का रोकना है, जिसमें अनेकों छोटी छोटी नालियाँ आकर मिलती हैं।

मकड़ी और त्वचा के रोग

कूने साहब ने इन रोगों से पीड़ित अनेक रोगियो को जल-चिकित्सा से अच्छा किया है। ये बीमारियॉ त्वचा या पैर के पसीन क रुकावट से उत्पन्न होती हैं। मकड़ी का रोग या तो शुष्क होता है या उसमें से एक प्रकार का जल बहता रहता है। शुष्क मकड़ी का रोग बहुत देर में आराम होता है। लड़को को यह रोग अधिक होता है। टीका आदि से जो बीमारियॉ बचो की दवा दी जाती है वे ही आगे चलकर इस रोग को उत्पन्न करती है।

२४ वर्ष का एक नवयुवक इस रोग से पीड़ित था। उसके सर और उसकी गर्दन पर इस बीमारी ने विशेष रूप से आक्रमण किया था। बहुत से मल्हम लगाये गये और बहुत सी औषधियों का सेवन किया गया किन्तु उनसे कुछ भी लाभ नहीं हुआ। वह अन्त में कूने साहब के पास गया और उनकी सलाह से जल-चिकित्सा करने लगा। कुछ समय में उसकी पाचन-शक्ति सुधर गई और उसका रोग भी घटने लगा। १६ दिनों में उसे बहुत लाभ हुआ और कुछ महीनों की चिकित्सा से वह बिल्कुल चंगा हो गया।

१०—सब प्रकार के सर की पीड़ा

जिस स्थान पर दर्द होता है लोग प्रायः उसी अङ्ग की पीड़ा का कारण ढूँढ़ने लगते हैं। सर दर्द के विषय मे ऐसा करना एक भारी भूल है, क्योंकि सर मे दर्द पेड़ू की खराबी से पैदा होता है। यह रोग पेड़ू मे उत्पन्न होने के कई वर्ष बाद सर मे मालूम होता है। अनुभव से यह बात अच्छी तरह जॉच ली गई है कि शरीर के दाहिने या बाई ओर विजातीय-द्रव्य के एकत्र होने से जब वह ऊपर की ओर उठता है तो आधी सीसी उत्पन्न होती है। किन्तु मस्तिष्क का क्षीण होना या मस्तिष्क में जलन होना पीठ में एकत्रित विजातीय-द्रव्य पर निर्भर रहता है। जिन लोगो को सर की बीमारी होने को होती है उनकी पाचन-शक्ति मे विकार कई वर्ष पहले उत्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् बवासीर और पेड़ू के भीतर हर प्रकार की गुमुड़ियॉ मालूम होने लगती हैं। आज-कल बच्चो की यह दशा देखने में आती है। जब पेड़ू की गुमुड़ियाँ गायब हो जाती हैं तो मनुष्य सर की व्याधियो से पीड़ित हो जाता है। जो गुमुड़ियॉ पहिले पेड़ू में थीं वे अब सर के अगल-बगल उत्पन्न हो जाती है।

यदि जोश अधिक न हुआ तो विजातीय-द्रव्य गरदन मे, भुजाओं और छाती के नीचे गुमुड़ियों की सूरत में जमा हो जाता है। ऐसा न समझना चाहिए कि विजातीय-द्रव्य शरीर के भीतर ही भीतर कड़ी और गुमुड़ियो की सूरत में चलता है। इसके विरुद्ध शरीर उस द्रव्य को वायु के रूप मे तबदील कर देता है जिससे वह बहुत जल्द एक अंग से दूसरे अंग मे पहुँच जाता है। विजातीय-द्रव्य गुमुड़ियों से हटकर सर की ओर चलता है और यदि वहॉ वह जम गया और गिल्टियॉ पैदा हो गई तो वहॉ एक रोग उत्पन्न हो जाता है जिसे मस्तिष्क का क्षय रोग कहते हैं। पहिले गिल्टियॉ पेड़ू में थीं। अब वे

सर में पहुँच जाता है, इसकी सत्यता इस बात से सिद्ध हो जाती है कि जब जल-चिकित्सा के स्नान लिए जाते हैं तो सर की गिल्टियाँ सूख जाती हैं और पेड़ू में गिल्टियाँ पैदा हो जाती हैं। जिस जिस स्वरूप से विजातीय-द्रव्य किसी सीमा तक पहुँचा है उसे उसी स्वरूप में बाहर निकलने के पहिले फिर जाना पड़ता है। जब पेड़ू की गिल्टियाँ बाहर निकल जाती हैं तब सर की पीड़ा दूर होती है। अधिक रोगियों में ऐसा ही होता है किन्तु कुछ रोगियों में ऐसा भी देखा गया है कि जिनको बवासीर हो गई थी, उनके पेड़ू में गिल्टियाँ पड़ गई थीं किन्तु उन्हे सर का दर्द कभी नहीं हुआ। वास्तव में यह अन्तर विजातीय-द्रव्य की स्थिति पर निर्भर है।

विजातीय-द्रव्य जब सामने या बगल में होता है तो गुमुड़ियाँ सर की ओर नही खिसकती हैं, यदि वे खिसकीं भी तो गरदन और फेफड़ों पर असर डालती हैं। किन्तु जब गुमुड़ियाँ पीछे के हिस्से में होती हैं तो वे सर पर अपना प्रभाव डालती हैं। मुखाकृति विज्ञान से मालूम हो गया है कि विजातीय-द्रव्य *जब रुक जायगा, उस समय यदि जल-चिकित्सा की गई तो* वह सर मे जाता है और उसमें दाने पड़ जाते हैं और वे जलन उत्पन्न करते हैं। उस समय यदि उसमें जोश पैदा हुआ तो ज्वर आ जाता है। डाक्टरों से पूछिये तो वे कहते जरूर है कि सर में जलन है किन्तु उसका कारण नही बतला सकते। वास्तव में पेड़ू की खराबी से सर की जलन उत्पन्न होती है। कूने साहब का मत है कि सर की जितने प्रकार की खराबियाँ पैदा हैं वे सब पेड़ू की खराबी से पैदा होती हैं। कूने साहब ने जल-चिकित्सा से सर के रोग से पीड़ित सैकड़ों रोगियों को चंगा किया है।

सर के दर्द और आधा सीसी को एक ही स्नान के बाद

लाभ पहुँचता है। कुछ लोग ऐसे मिलते हैं जिनके सर में दर्द रोज उठता है। शोक है कि वे वास्तविक कारण को नहीं समझते, केवल बाहरी दवा लगा-लगाकर उसे अच्छा करना चाहते हैं, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि वे स्वाभाविक आहार के साथ स्नान करें तो उनके सर का दर्द हमेशा के लिये दूर हो सकता है। ऐसे रोगियों का पेड़ू में विजातीय-द्रव्य की अधिकता के कारण समय अधिक लगता है।

एक मनुष्य मस्तिष्क के क्षीण होने के रोग से पीड़ित था। उसने बहुत से डाक्टरों की दवा की किन्तु उसका रोग बजाय अच्छा होने के और अधिक बढ़ गया। शुरू-शुरू में उसके सर मे कठिन पीड़ा थी किन्तु धीरे-धीरे उसे मस्तिष्क की क्षीणता की बीमारी हो गई। वह कूने साहब के पास गया और उसने जल चिकित्सा करने की प्रार्थना की, उसका हाजमा खराब हो चुका था। उसने कूने साहब के आदेशानुसार चिकित्सा प्रारम्भ की। उसको दिन में कई स्नान करने के लिये बतलाये गये और स्वाभाविक भोजन करने और खुली हवा में घूमने के लिये कहा गया। सर की गुमड़ियाँ धीरे-धीरे लोप हो गईं और कुछ समय में वह बिल्कुल चंगा हो गया।

११—स्नायु और मन की बीमारियाँ

निद्रा का न आना

बीमारियों की एकता स्नायु की और मन की बीमारियों से सम्बन्ध रखती है। आजकल स्नायु की बीमारियाँ बहुत देखने में आती हैं। इन बीमारियों को अगणित नाम दिये जा रहे हैं और उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। घबराहट, आत्मघात, बातशूल, वहम मिजाज, पित्तोन्माद, मिर्गी, पागलपन, नपुंसकता, लकवा आदि ऐसी बीमारियाँ हैं जिन्हें

सब जानते हैं। इसी प्रकार की और भी बहुत सी बीमारियाँ हैं जिनके उत्पन्न होने का एक ही कारण है।

स्नायु के विकारों के साथ-साथ न मालूम कितने रोग देखने में आते हैं किन्तु उनसे वास्तव में बीमार का वास्तविक पता नहीं लगता। किन्तु जब हम बीमारी की दशा पर ध्यान पूर्वक विचार करते हैं तो मालूम होता है कि उसे आंतरिक परेशानी रहती है। रोगी को एक प्रकार की अज्ञात और अकथनीय व्याकुलता मालूम होती है किंतु वह उसका कारण नही जानता और अपने रोग को स्वीकार भी नहीं करता।

एक आदमी बड़ा वाचाल होता है और दूसरा मितभाषी। कुछ लोगो को निद्रा नहीं आती और कुछ खूब सोते है। कुछ अपने जीवन से इतने ऊब जाते हैं कि आत्महत्या करने पर उतारू हो जाते है। कुछ पागल होते हैं और कुछ लकवे की बीमारी से पीड़ित रहते है। इन बीमारियों से यह बात सूचित होती है कि मनुष्य का अपनी इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रह जाता। हजारो उनकी दवायें की जाती हैं किन्तु ऐसी बीमारियाँ अच्छी नहीं होती। वे जीवन के साथ ही छूटती हैं।

इनके लिए जो औषधियाँ की जाती है वे उन बीमारियों को और भी अधिक बढ़ा देती हैं। धीरे-धीरे मनुष्य के अङ्ग और प्रत्यंग ढीले पड़ते जाते हैं और वह मर जाता है!

हमारी एक बहिन थी, जिसे पागलपन का रोग हो गया था। वह कभी रोती, कभी चिल्लाती और कभी चुपचाप बैठी रहती थी। न मालूम कितनी औषधियाँ की गई किन्तु अन्त मे उसकी मृत्यु हो गई।

स्नायु की बीमारियों से डाक्टर भी अब घबड़ा उठे हैं और उनका अच्छा करना अब उनकी शक्ति के बाहर हो रहा है। अतएव अब वे कहने लगे हैं कि भाई इसे पहाड़ पर ले जाओ,

इसे अमुक स्थान पर ले आओ, इसे अमुक-अमुक भोजन खाने के लिए दो आदि। इससे भी मनवांछित लाभ नहीं होता, किसी न किसी रोगी में कुछ फायदा हो जाता है।

लुई कूने की रिपोर्टों से आपको मालूम होगा कि स्नायु की बीमारियों को जल-चिकित्सा ने किस प्रकार लाभ पहुँचाया है। हमारे शरीर में दो प्रकार के स्नायु होते हैं, एक तो वे हैं जो हमारी इच्छा-शक्ति के आधीन हैं और दूसरे वे हैं जो इच्छा-शक्ति के आधीन नहीं हैं। इच्छा-शक्ति के आधीन न रहनेवाले स्नायु साँस लेने मे, पाचन-क्रिया में और खून के दौरान में पाये जाते हैं। इन स्नायुओं में जब विकार आ जाता है तब स्नायु सम्बन्धी बीमारी पैदा होती है।

वास्तव में बात यह है। विजातीय-द्रव्य के इकट्ठा होने से शरीर के कोठे विकृति हो जाते हैं। कोठों के विकृति होने से स्नायु विकृति होते हैं। स्नायुओं के सम्बन्ध ढीले पड़ जाते हैं और उनके संबंध ढीले पड़ जाने से स्नायु की बीमारी होती है। जिस प्रकार सब बीमारियों में पाचन-शक्ति खराब हो जाती है उसी प्रकार स्नायु की बीमारियों में भी पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है।

साँस लेने में, खून के सचार में और पाचन-शक्ति मे जो बीमारियाँ होती है वे बहुत धीरे-धीरे उत्पन्न होती हैं। इस दशा में भी स्नायुओं पर असर पड़ता है और वे भी रुग्ण हो जाती हैं। इन स्नायुओं पर हमारी इच्छा-शक्ति का कोई प्रभाव नहीं होता। बल्कि उनका सम्बन्ध फेफड़े, दिल, मेदा, गुरदे, आँतें और मूत्राशय से होता है जो अपना काम आपसे आप करते रहते हैं। मेदे की, गुरदे की, मूत्राशय की अथवा दिल की बीमारी हमें उस समय तक नही मालूम होती जब तक उनसे सम्बन्ध रखने वाली रगें विजातीय-द्रव्य से भर नहीं जातीं। अतएव जब तक पाचन से सम्बन्ध रखनेवाली रगें विकार से भर नहीं

जातीं तब तक मनुष्य को पाचन-शक्ति खराब नहीं होती।

स्वस्थ होने के लिए पाचन-शक्ति का ठीक होना अत्यंत आवश्यक है। शरीर भर में विजातीय-द्रव्य मन्दाग्नि से उत्पन्न होता है। सब प्रकार की बीमारियाँ या तो मंदाग्नि से पैदा होती हैं या पैतृक होती हैं, किसी भी बीमारी का यह एक साधारण कारण है। शरीर में जब तक बल रहता है तब तक वह कठिन-कठिन बीमारियों द्वारा विजातीय-द्रव्य को निकालने का प्रयत्न करता है। जब बल घट जाता है तब बीमारियाँ गुप्त रूप से उत्पन्न होती हैं और स्नायु और दिमाग को खराब कर देती हैं। स्नायु को बीमारियों में भी दूसरी बीमारियों की तरह ठंढक और गर्मी मालूम होती है जो आन्तरिक ज्वर के कारण उत्पन्न होते हैं।

अतएव हम इस परिणाम में पहुँचते हैं कि स्नायु की बीमारियाँ दीर्घकालीन रोग को सूचित करती हैं। अतएव इसको इस प्रकार कहा जाय कि स्नायु की बीमारियाँ उसी प्रकार उत्पन्न होती हैं जिस प्रकार चेचक, खसरा, रक्त ज्वर, डिफ्थीरिया, गरमी, और उनका इलाज भी उसी प्रकार होता है जिस प्रकार इन रोगों का तो इसमें कोई हानि नहीं है।

"विजातीय-द्रव्य से हरएक प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं" इस सिद्धान्त को जिसने समझ लिया है वही इलाज भी कर सकता है। जिस प्रकार एक सेनापति उसी सेना के लोगों को अपने वश में कर सकता है जिस सेना के सिपाहियों को वह भलीभाँति जानता है। जो सेनापति अपनी सेना के सिपाहियों को नहीं जानता, उसकी पराजय अवश्य होती है। किसी रोग के विशेषज्ञ होने से काम नहीं चलता। विशेषज्ञ लोग प्रायः गोता खाते हैं, जब तक वे उन नियमों को न समझें जिनसे शरीर की क्रिया चलती है।

जो सम्पूर्ण सृष्टि को एक अभेद्य विश्व समझता है वही

सृष्टि के चमत्कारों को समझ सकता है और उसके नियमों से लाभ उठा सकता है। प्राय: यह देखने में आता है कि गरमी के कारण प्रकृति एक ही द्रव्य को भिन्न-भिन्न स्वरूपों में प्रकट करती है। देखिये गरमी को न्यूनाधिकता से पानी, कोहरा, भाफ और बादल की सूरत में दृष्टिगोचर होता है।

स्नायु-सम्बन्धी रोगों के कारणों को डाक्टरी-चिकित्सा न तो कुछ समझती है और न उनका इलाज ही कर सकती है। बहुत-सी दशाओं में तो स्नायु की बीमारियाँ डाक्टरों के समझ में आती ही नहीं। स्नायु के रोगी जब डाक्टरों के पास गए तो उन्होंने कहा—अरे तुमको कोई बीमारी नहीं है। किस चक्कर मे पड़े हो। वे रोग से अन्त मे पीड़ित हुए और जल-चिकित्सा द्वारा अच्छे हुए।

जो जल-चिकित्सा पर विश्वास करने वाले हैं वे एक सिद्धांत से रोग का कारण निर्धारित करके रोगी को अवश्य चंगा करते हैं। उसी सिद्धांत से जल-चिकित्सा के डाक्टर स्नायु की बीमारियो को कई वर्ष पूर्व केवल चेहरा देखकर मालूम कर लेते हैं। पीठ पर विजातीय-द्रव्य का इकट्ठा होना वास्तव में स्नायु सम्बन्धी बिमारियो का मुख्य लक्षण है।

मानसिक रोग—

मानसिक रोगों के विषय में भी वही बात कही जा सकती है जो स्नायु-संबंधी रोगों के विषय मे कही गई है। डाक्टर लोग मानसिक रोगों के तत्वो को नही समझते। जो कारण साधारण-तया बतलाये जाते हैं उनमें वास्तव मे मानसिक रोग नही उत्पन्न होते। किंतु वे कई वर्षों के संचित विजातीय-द्रव्य से उत्पन्न होते हैं। अस्वाभाविक जीवन और पाचन-शक्ति की खराबी से विजातीय-द्रव्य धीरे-धीरे संचित होता रहता है और उसी से मानसिक बीमारियाँ पैदा होती हैं। जिन मनुष्यों का रहन-सहन

स्वाभाविक होता है वे मानसिक रोगों में नहीं फँसते। जिस मनुष्य के सर का पिछला भाग जितने विजातीय-द्रव्य से भरा होगा उसको उतनी ही भारी मानसिक बीमारी होगी। वास्तव मे मानसिक बीमारियों की बहुत कुछ जिम्मेदारी हमारी आधुनिक सभ्यता है जिसके चक्कर मे पड़कर लोग प्राकृतिक नियमों का बार-बार उल्लंघन करते रहते हैं। पानी के बदले लोग नाना प्रकार की शराब चमकते हुए ग्लास मे रखकर पीते है। बढ़िया-बढ़िया सिगार पीते हैं। जिस कमरे मे पाँच मनुष्यों को रहना चाहिए उसमें दस मनुष्य रहते हैं। इस प्रकार अस्वाभाविक रहन-सहन से यदि मानसिक रोग उत्पन्न हो तो इसमें क्या आश्चर्य है।

देहातों में जहाँ के निवासी खुली हवा में रहते हैं और सादा भोजन करते है,इन बीमारियों का नाम भी नही है। यदि मिलती भी है तो उन्हीं लोगों की सन्तानो मे जिनके पिता शराबी है। ऐसा बच्चा पैतृक विजातीय-द्रव्य के भार से पीड़ित रहता है। जिससे भयानक बीमारी किसी-न-किसी समय उत्पन्न होती है।

शराब पाचन क्रिया पर इतना भार डालती है कि दूसरे काम करने की शक्ति शरीर में शेष नहीं रह जाती। इसी कारण शराबियों को बड़ी सुस्ती और निद्रा मालूम होता है। पाचन-क्रिया से जो गैस उठती है वह मानसिक रोग धीरे-धीरे पैदा करती रहती है। पिता के शराब से उत्पन्न होने के समय जो संतान पैदा होती है वह या तो पागल होती है या पागल होने के पहिले मृत्यु को प्राप्त होती है। सब प्रकार के मानसिक रोग पैतृक या साधारण एकट्ठा हुए विजातीय-द्रव्य से उत्पन्न होते हैं, जो पाचन की खराबी से पैदा होता है। अतएव मानसिक रोगो का कारण भी पेड़ू से ही उत्पन्न होता है।

मनुष्य का जीवन जितना अधिक सादा और स्वाभाविक होगा उतना ही स्वस्थ और प्रसन्नचित्त वह होगा। हब्शी जब

तक गुलाम रहे तब तक उनको अधिक परिश्रम करना होता था और मोटा अन्न खाने को मिलता था, तब तक वे स्वस्थ रहे किन्तु जब से वे स्वतन्त्र हो गये और नवीन सभ्यता में फँस गये तब से वे नाना प्रकार के रोगों में फँसे रहते हैं।

मानसिक रोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कम होता है। इसका कारण यह है कि वे सिगरेट नहीं पीतीं, जितना पुरुष पीते हैं और वे शराब का भी पुरुषों की अपेक्षा व्यवहार कम करती हैं।

बहुत-सी दशाओं मे देखा गया है कि रोग से पूर्व या रोग के साथ ही साथ शारीरिक और मानसिक उत्तेजना अधिक होती है। शरीर और मस्तिष्क मे विजातीय-द्रव्य की अधिकता से मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है और मस्तिष्क से स्नायु उत्तेजित होते हैं जिससे मनुष्य के मन मे चंचलता बढ़ती है और कभी उसे छोड़कर दूसरा काम करने लगता है।

मानसिक रोगों का एक मुख्य कारण पीठ पर विजातीय-द्रव्य का इकट्ठा होना है। जिससे पेड़ू की रगों पर, मोटी रग पर और सिमपेथाइक की रगों पर भारी-भारी हानि पहुँचती है। इस हानि से बचत उसी समय हो सकती है जब किसी कठिन बीमारी के कारण यह विजातीय-द्रव्य बाहर निकल जाय। तीक्ष्ण ज्वर से ऐसा दीर्घ स्थायी रोग उत्पन्न हो सकता है जो मस्तिष्क को बिगाड़ देता है। तीक्ष्ण रोगों से विजातीय-द्रव्य का जितना अधिक व कम उभाड़ होगा उतना ही मस्तिष्क अधिक व कम बिगड़ता रहेगा। इसके अलावा विजातीय-द्रव्य के दबाव की कमी के कारण बहुत से पागल अच्छे होते हुए देखे गये हैं और जब उसका दबाव फिर बढ़ गया है तो फिर पागल हो गए हैं।

विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल फेंकने से मानसिक रोग

अच्छे हो सकते हैं। इस तरीके से सैकड़ों रोगी चंगे हुए हैं। एक उदाहरण इस स्थान पर देना उचित मालूम होता है। २३ वर्ष की एक लड़की कई वर्षों से पागल हो गई थी। उसकी दशा ऐसी थी कि वह स्नान तक नहीं ले सकती थी। उसकी माँ उसे स्नान कराती थी। चार सप्ताह में उसकी दशा इतनी सुधर गई कि वह अपने हाथ से स्नान लेने लगी। वह साफ और सुथरी भी रहने लगी। ६ महीनों मे वह एकदम चङ्गी हो गई।

कुछ ऐसी दशाये होती हैं जिनमें विजातीय-द्रव्य के निकालने का कोई सरल उपाय ही नही हो सकता, वहाँ रोगी का अच्छा होना कठिन हो जाता है। ऐसे रोगी देखने में आये हैं जो स्नान कराने में बल प्रयोग करते है और जबरदस्ती करने पर भी स्नान नहीं करते, आप ही बतलाइये, वे कैसे अच्छे हो सकते हैं। मानसिक रोग की समता क्षयी रोग से दी जा सकती है। क्षय रोग जब अन्तिम अवस्था में पहुँच जाता है तो नही अच्छा होता, उसी प्रकार मानसिक रोग भी जब चरम सीमा मे पहुँच जाता है तो फिर नही अच्छा होता।

चेहरे को देखकर बतलाया जा सकता है कि अमुक मनुष्य को मानसिक रोग होने वाला है। उसी समय से यदि जल-चिकित्सा प्रारम्भ कर दी जाय तो रोग निर्मूल हो सकता है। बहुत से मानसिक रोग असाध्य समझे जाते हैं किंतु वास्तव में यह बात ठीक नहीं है। यहाँ पर एक उदाहरण दिया जाता है।

एक रोगी को Progressive paralysis हो गया था। कई वर्षों से उसकी पाचन शक्ति नष्ट हो रही थी और वह अपने व्यवसाय की चिन्ता से इस कदर डूबा हुआ था कि उसका मस्तिष्क बिगड़ने लगा। बहुत-सी दवायें की गईं किन्तु वह अच्छा नही हुआ। सन् १८९७ ई० में डाक्टरों की सलाह से वह उस स्थान का पानी पीने के लिये गया जहाँ मिनरल

पानी (Mineral water) का झरना बहता था। उस पानी का भी उस पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि उसकी दशा और भी अधिक खराब हो गई। उसकी जबान लटपटाने लगी और उसका दिमाग इतना बिगड़ा कि जो कुछ वह बकता था उसे कुछ मालूम ही न होता था। चार बड़े-बड़े चिकित्सक बुलाये और उन्होने कहा कि पारे की मालिश करवाइए। मालिश करने से रोगी की हालत इतनी बिगड़ गई कि जब उससे कोई प्रश्न किया जाता तो वह उसी प्रश्न को दोहरा देता, उसका उत्तर नही दे सकता था। उसके अच्छे होने की सब आशा जब जाती रही तो लोग उसे वायना (Viena) ले गये। वहाँ डाक्टरो ने बतलाया कि इसे मस्तिष्क का क्षय रोग हो गया है, इसलिए इसे पागलखाने मे रखना पड़ेगा। उसको आयोडाइन पीने को बतलाया गया। लोग अन्त मे निराश होकर उसे कूने साहब के पास ले गये। दवा के शुरू मे रोगी एक शब्द भी नही बोलता था। वह बेखबर था और प्रश्नो का उत्तर नहीं देता था। इसके अतिरिक्त वह शौच क्रिया स्वयं नहीं कर सकता था क्योकि उसमे किसी कार्य के करने का उत्साह नहीं था। ठंढे स्नान और स्वाभाविक भोजन के कारण उसका रोग घटने लगा। एक सप्ताह मे वह चङ्गा हो गया।

उपरोक्त दो उदाहरणो से सिद्ध है कि सब प्रकार के रोगो का कारण एक ही है। यदि मानसिक रोगो का कारण वही न होता जो और रोगों का है तो ये रोगी चंगे न हो सकते।

१२—कोढ़

कोढ़ की बीमारी अधिकतर गर्म देशो में होती है। जो मनुष्य इस रोग से ग्रसित हो जाता है उसके लिये सिवाय मृत्यु के कोई-औषधि नही है। कही दूसरे लोग भी इस रोग में न पकड़ जायें इस भय से कोढ़ी अपने घर से पृथक किये

जाकर एक दूर के स्थान मे रक्खे जाते हैं। साधारणतया लोग उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

जिन देशों का जलवायु न बहुत ठंडा है और न बहुत गरम है वहाँ कोढ़ बहुत कम होता है किन्तु वहाँ गठिया और जलोदर रोग उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार खजूर का पेड़ केवल गरम देशों में पैदा होता है और शाहबलूत का वृक्ष साधारण गर्म और सर्द देशों में, इसी प्रकार कोढ़ गरम जलवायु में उत्पन्न होता है।

कोढ़ दो प्रकार का होता है, बहता हुआ और शुष्क। बहते हुए कोढ़ में शरीर धीरे-धीरे सड़ता जाता है और कोढ़ी को अत्यन्त वेदना होती है। उसका रोग बढ़ता ही जाता है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है। शुष्क कोढ़ में पाचन शक्ति बढ़ते हुये कोढ़ की तरह नष्ट होती रहती है। इसके अतिरिक्त काले-काले सड़े हुए धब्बे हाथ और पावों के सिरों में निकल आते हैं और भीषण ज्वर भी होता है। मांस धीरे-धीरे गायब होने लगता है। पहले अँगुलियाँ गायब होती है और फिर शरीर के दूसरे भाग यहाँ तक कि केवल हड्डी शेष रह जाती है। अन्त मे शरीर वृक्ष की ठूँठ की तरह रह जाता है।

कोढ़ का कारण वही है जो और बीमारियो का हुआ करता है अर्थात् विजातीय द्रव्य का शरीर में एकत्रित होना। यह विजातीय-द्रव्य या तो पैतृक होता है या अस्वाभाविक रहन सहन से उत्पन्न होता है। बीमारी पहले पहल पेड़ू या पाचन के अंगों मे उत्पन्न होती है। गरम देशों की गरमी के कारण विजातीय द्रव्य बड़े जोर से उफनाता है और वह शरीर के अंगों के सिरो की ओर जाकर उन्ही मे जम जाताहै। इस प्रकार लगातार जमने से पट्ठो मे जो इन सिरो को जीवन-शक्ति पहुँचाते हैं, रुकावट पड़ जाती है और वे अपनाकाम नहीं कर सकते इस प्रकार कोढ़ी के हाथ और पैर बिलकुल शून्य हो जाते हैं।

इन रोगियों को भीतरी तीव्र ज्वर होता है किन्तु बाहर से उनका शरीर ठंढा रहता है। शुष्क कोढ़ में प्रचंड भीतरी गरमी के कारण सिरे सूख जाते है। रोगी को चाहे जितना पोषक भोजन क्यो न दिया जाय किन्तु पाचन-शक्ति की कमजोरी के कारण वह हजम नहीं होता। वह भोजन बिना पचे-हुए शरीर के बाहर निकल जाता है और रोगी का कोई पोषण नही होता। वास्तव मे शरीर का पोषण उस भोजन से होता है जो रोगी को हजम होता है। अतएव पोषण के न मिलने से रोगी का शरीर गलना शुरू होता है।

गलित कोढ़ मे सड़न जलोदर रोग की तरह होती है। यह उतना ही भयानक है जितया कि क्षय रोग। जिस प्रकार क्षय रोग में विजातीय द्रव्य फेफड़ों को सड़ा देता है उसी प्रकार विजातीय द्रव्य कोढ़ियों क अंगो को सड़ाता रहता है।

डाक्टरी इलाज से इस रोग को बहुत कम लाभ हुआ है या यो कहिये कि बिलकुल नहीं हुआ। शरीर का विजातीय द्रव्य जब निकाल दिया जाय और रोग का ज्वर भी निर्मूल कर दिया जाय तब कोढ़ी अलबत्ते अच्छा हो सकता है। यदि विजातीय-द्रव्य पूर्ण रूप से न निकला तो रोगी का एक दम चङ्गा होना कठिन है यद्यपि उसको कुछ लाभ अवश्य होगा।

जल-चिकित्सा से कोढ़ी के रोग बढ़ने का कोई अंदेशा नहीं रह जाता और इसको छूत की बीमारी समझ कर उन लोगो को भी किसी प्रकार की हानि पहुँचने का डर नही रह जाता है जो उसके साथ रहते हैं। कोढ़ी को स्वाभाविक भोजन और ठंढे स्नान देते रहना चाहिये। जो लोग उसके पास रहते हैं उनको भी स्वाभातिक भोजन और ठंढे स्नान करना चाहिए यह एक बड़े शोक की बात है कि कोढ़ी बहुत तंग स्थानों मे प्राय. रक्खे जाते है। जहॉ सास लेने के लिये उनको काफी हवा भी नहीं मिलती।

तीन लड़के एक बार कूने साहब के पास गये जिनको कोढ़ का रोग हो गया था। उनकी हालत बड़ी शोचनीय थी। उनकी अवस्था क्रमशः ६, १३, और १५ वर्ष की थी। उनके हाथ के सिरे, अँगुलियो के पोर सड़ चुके थे और अँगुलियों के शेष हिस्से फूले हुए थे। दो भाइयों के पैर भी खराब हो गये थे। उनमे घाव हो गये थे और मवाद निकल रही थी। हाथों के छूने की शक्ति बिलकुल जा चुकी थी। डाक्टरों ने उनके हाथों में सुइयाँ चुभोया था और उनका असर उन बच्चों पर कुछ भी नहीं होता था।

कूने साहब ने उनकी चिकित्सा करना शुरू किया। दो और कभी तीन सिट्‌ज़बाथ दिये जाने लगे। कभी-कभी उनको हिप बाथ भी दिया जाता था। भोजन उनको स्वाभाविक मिलने लगा और वे खुली हवा मे रक्खे जाने लगे। पहले तो घावों की बदबू विजातीय-द्रव्य के उभाड़ से और भी बढ़ गई किन्तु फिर घटने लगी।

प्रातःकाल खाने के लिये सूखी गेहूँ की रोटी और सेव दिये जाते थे, रात को तरकारियाँ, केवल उबाली हुई और आटे की रोटी दी जाती थी। थोड़ा नमक और घी भी दिया जाता था। माँस और शोरवा एक दम बन्द कर दिया गया था। पीने के लिये केवल ताजा पानी दिया जाता था। पन्द्रह रोज में पैरों के घाव की मवाद बन्द हो गई और वे भीतर से भरने लगे। दूसरे दो बच्चो के घावो की दशा एक महीने मे सुधरी। हाथों की हालत भी अच्छी होने लगी। विजातीय-द्रव्य पेड़ू की तरफ जाने लगा जिससे रोगियों को हाथ, पैर और जोड़ो में दर्द मालूम हुआ।

चिकित्सा के पहले सब से बड़ा लड़क जूते भी नहीं पहन सकता था किन्तु चार सप्ताह के बाद वह मामूली चमड़े का

जूता पहनने लगा, अंगों के सिरों में चैतन्यता आने लगी और पाचन शक्ति अपना काम पूर्ण रूप से करने लगी। शुरू-शुरू में लड़कों को भूख नहीं लगती थी, किन्तु अब वे भूख के मारे चिल्लाते थे। बच्चे धीरे-धीरे अच्छे हो गये।

कूने साहब के मत से यह बात उपरोक्त रोगियों द्वारा भली भांति सिद्ध कर दी गई कि कोढ़ का वही कारण है जो अन्य रोगों का हुआ करता है।

१३—गरमी सुजाक, नपुंसकता

बीमारियों के सम्बन्ध में कोई चीज गुप्त रखना हानिकारक है। बहुत सी ऐसी बीमारियाँ हैं जिनके कहने मे हमारे नवयुवकों को बड़ी लज्जा मालूम होती है किन्तु उनके लिये ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। हमें बहादुरी के साथ अपनी गुप्त बीमारियों को बतलाना चाहिए और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस समय जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियाँ जैसे गरमी और सुजाक स्त्री और पुरुषों मे अधिक फैल रही हैं। हजारों नर नारी प्रति वर्ष इन बीमारियों के भेंट होते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि उनकी औषधियाँ विस्तार-पूर्वक बतलाई जायँ।

आज-कल गर्मी (Sipheis) को दूर करने के लिये अनेक दवाएँ की जाती हैं किन्तु उनसे रोग निर्मूल नहीं होता। जल-चिकित्सा ही एक अमोघ औषधि है। गर्मी के बीमारों को कुछ अच्छा करके डाक्टर लोग प्रायः विवाह करने की सलाह दिया करते हैं। इससे बढ़कर और गलती क्या हो सकती है। इससे स्त्री का भी स्वास्थ्य खराब हो जाता है। ऐसे स्त्री-पुरुषों की सन्तति भी निकम्मी होती है। गर्मी दो प्रकार की होती है, एक गुप्त और दूसरी स्पष्ट। स्पष्ट गर्मी गुप्त गरमी से अच्छी है क्योंकि स्पष्ट गरमी में तो उसके चिह्न दिखलाई पड़ते हैं किंतु गुप्त गरमी के

चिह्न इतने गूढ़ होते हैं कि इस बीमारी का पता तक नहीं चलता।

मुखाकृति विज्ञान से गुप्त गरमी का पता फौरन चल जाता है और उसका सफलता-पूर्वक इलाज भी होता है। गरमी की तरह और भी बीमारियाँ होती हैं, जिन्हें प्रमेह सुजाक स्वप्नदोष आदि के नाम से पुकारते हैं।

जननेंद्रियों को और मूत्रेन्द्रियों को ईश्वर ने मल को बाहर निकाल कर फेंक देने के लिए बनाया है और इसलिए विजातीय द्रव्य इन स्थानों पर बहुतायत से इकट्ठा होता है। यह बात स्त्रियों से अधिक देखने में आती है। त्वचा में सोखने की शक्ति होनेके कारण विजातीयद्रव्य एक शरीर से दूसरे शरीर में बड़ी आसानी से पहुँच जाता है। पुरुष का विजातीय-द्रव्य स्त्री में जा सकताहै और स्त्री का पुरुष में। यदि मनुष्य में स्त्री की अपेक्षा अधिक विजातीय द्रव्य है तो वीर्य जो उसके शरीर के रस से बनता है स्त्री के शरीर मे मिलकर उसे अधिक रोगिणी बना सकता है।

भोग इच्छा का विवरण ठीक-ठीक और सन्तोष-पूर्वक अभी तक नही लिखा गया। यह इच्छा कब ठीक होती है और कब बेठीक इस विषय पर अभी स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं लिखा गया है। तथापि पुस्तकों से यह बात मालूम हो सकती है कि आत्म-रक्षा के विचार से उतर कर सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा मनुष्य में सबसे प्रबल होती है। दूसरी इच्छाओं की तरह कामेच्छा की भी शुद्ध दशा होती है और जब शरीर विजातीय-द्रव्य से भर जाता है तो उसकी दशा अशुद्ध हो जाती है। कामेच्छा एक थर्मामेटर है जिसमे स्वास्थ्य की दशा निरन्तर मालूम होती रहती है। जब विजातीय-द्रव्य की मात्रा बढ़ जाती है तो उसके दबाव से रगों में अधिक जोश पैदा होता है जिसमे काम चेष्टा अधिक बढ़ती है किन्तु साथ ही वीर्य भी धीरे-धीरे घटता जाता है। काम चेष्टा की शुद्ध दशा मनुष्य को

बुरे विचारों से बचाये रहती है। स्वस्थ मनुष्यों की कामेच्छा ठीक रहती है। वे स्वाभाविक भोजन और रहन-सहन से शरीर अपने वश में, बिना किसी कष्ट के रखते हैं।

कामेच्छा की बीमारी उन लोगों को वास्तव में होती है जिनके शरीर में विजातीय-द्रव्य भरा हुआ है। वे ही जननेन्द्रियों की नाना प्रकार के बीमारियों में फँसे रहते हैं। गरमी-सुजाक और प्रमेह का असर उन लोगों पर नहीं होता जिन लोगों के शरीर विजातीय-द्रव्य से मुक्त हैं। किंतु जिनके शरीर विजातीय-द्रव्य से भरे हुए हैं वे इन बीमारियों के बहुत जल्द शिकार बनते हैं।

एक शरीर का संचित हुआ विजातीय-द्रव्य भोग के समय दूसरे शरीर में जाता है और इस व्यक्ति के विजातीय-द्रव्य से मिलकर खमीर उत्पन्न करता है। इस क्रिया से खमीर मे अधिक शक्ति बढ़ जाता है। वह विजातीय-द्रव्य को गरमी, सुजाक आदि रूप मे बाहर निकालने की कोशिश करता है। अतएव इन बीमारियों का कारण विजातीय-द्रव्य यदि ठीक रीति से शरीर के बाहर निकाल दिया जाय तो आदमी चंगा हो सकता है। डाक्टर लोग इसका चिकित्सा में बड़ी गलती करते हैं। वे पिचकारी द्वारा आयोडीन, आयोडाइट इत्यादि औषधियों को शरीर के भीतर पहुँचाकर रोग को निर्मूल करना चाहते है। इससे शरीर का शक्ति नष्ट होती है और बीमारियाँ दब जाती हैं। किन्तु समय को पाकर वे फिर उभड़ती हैं।

अतएव दवाओं से जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियाँ अच्छी नहीं होती। विरुद्ध इसके उनकी दशायें और खराब हो जाती है। स्नानों से यह बीमारियाँ जड़ से दूर हो जाती हैं। शुरू मे उभाड़ जरूर होता है किन्तु उससे डरना नहीं चाहिये। यह उभाड़ उस विजातीय-द्रव्य का है जो शरीर के भीतर दवाओं के खाने और मिथ्या आहार-विहार से भर गया है।

जल-चिकित्सा से भयानक से भयानक गरमी अच्छी होती है। इससे गरमी की जड़ भी चली जाती है जिससे भविष्य की सन्तान इस बीमारी से सुरक्षित हो जाती है। गरमी के वे ही रोगी अच्छे हो सकते हैं जिनकी पाचन-शक्ति बिलकुल नहीं बिगड़ जाती। जो रोगी कुछ भी नहीं पचा सकते उनका अच्छा होना असम्भव है।

गर्मी-सुजाक आदि बीमारियाँ जब प्रकट होती हैं तो उनसे साफ मालूम होता है कि शरीर में विजातीय-द्रव्य भरा हुआ है। अगर ये बीमारियाँ अच्छी न की गई तो उनसे गठिया और क्षय रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। बहुत से बच्चों के पैदाइशी क्षय रोग होता है। साधारण जनता उसके कारण को नहीं समझती। वास्तव में माता-पिताओं के कर्मों का बच्चों को भोगना पड़ता है।

सुजाक और गर्मी मे बड़ी जलन पैदा होती है और सूजन भी आ जाती है। प्रकृति इन बीमारियाँ के द्वारा दोष-युक्त विजातीय-द्रव्य यानी मवाद को शरीर के बाहर निकालने की कोशिश करता है। जितना ही अधिक विजातीय-द्रव्य बाहर निकलेगा उतना ही अधिक शरीर शुद्ध होगा। जल-चिकित्सा बाहर निकलनेवाली क्रिया को कम कष्टदायक और हानिकारक बना देती है। किन्तु विजातीय-द्रव्य को बाहर निकालने वाली शारीरिक क्रिया में कोई बाधा नहीं डालती। यह नहीं कहा जा सकता कि गरमी आदि के रोगी कितने समय में अच्छे हो सकेंगे। उनका जल्दी और देर में अच्छा होना विजातीय-द्रव्य की न्यूनता व अधिकता पर निर्भर है। डाक्टर लोग पिचकारी द्वारा शीशा, पारा, जस्ता और आइडोफार्म मूत्राशयों और स्त्रियों के योनियों में इस वास्ते चढ़ाते हैं कि वे बहते हुए विजातीय-द्रव्य को रोक देवें। यह कितनी

भयानक बात है। जो मवाद रोक दी जाती है आखिर शरीर के भीतर उसका क्या परिणाम होता है। इस पर कोई कुछ नही विचार करता। प्रकृति के सब काम किसी विशेष कारण के साथ होते हैं। उसकी सहायता प्राकृतिक-साधनों से ही की जा सकती है अन्य साधनों से नहीं। डाक्टरों के गलतियों से ही वास्तव में देश मे इतने पागलखाने और सफाखानों की वृद्धि हो रही है। यदि उनकी दवाओं से लाभ पहुँचता तो अस्पतालो की संख्या इतनी न बढ़ती।

नपुंसकता

आजकल नपुंसक लोगों की संख्या बहुत काफी बढ़ी हुई है। मेडिकल साइस ने अभी तक कोई अच्छी औषधि नहीं निकाली है। कोई अच्छी औषधि उस समय तक निकल भी नहीं सकती जब तक यह न मान लिया जाय कि शरीर के अन्दर विजातीय-द्रव्य की उपस्थिति से ही प्रत्येक प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं। शरीर से यदि विजातीय-द्रव्य निकाल दिया जाय तो मनुष्य की नपुंसकता अच्छी हो सकती है। यदि लगकर जल-चिकित्सा की जाय तो जननेन्द्रियों के काम करने की शक्ति फिर से प्राप्त हो सकती है। स्त्रियो की नपुंसकता को बाँझपन कहते हैं। यह बाँझपन जननेन्द्रियो की बुरी बनावट से नही पैदा है, किन्तु इसका भी कारण विजातीय-द्रव्य ही है। साथ ही साथ पुरुषो की काम चेष्टा स्त्रियों की काम चेष्टा से भिन्न है और इस वास्ते पुरुषो मे नपुंसकता दूसरे ही रूप मे दिखलाई देती है। नपुंसकता होने के पहले इसके लक्षण बतलाये जा सकते हैं। इस रोग से होने के पहले संभोग की बड़ी इच्छा होती है और इंद्रियों में खुजली पैदा होती है। यह हस्तक्रिया ही से उत्पन्न होता है। जब काम-वासना चर्म-सीमा तक पहुँच जाती है तब मनुष्यों में नपुंस-

कथा शुरू हो जाती है। धीरे-धीरे फिर उसके इन्द्रियों की सजीवता जाती रहती है। और पुरुष अपनी स्त्रियों के बैठने से भी लज्जा मालूम करते हैं। न मालूम कितने आत्म-हत्या कर लेते हैं।

२३ वष का एक नवयुवक था। १२ वर्ष की अवस्था मे हस्त मैथुन करने की उसकी आदत पड़ गई थी। उसकी स्मरण-शक्ति नष्ट हो चुकी थी। वह इस बुरी आदत को छोड़ने का प्रयत्न करता था किन्तु ऐसा नहीं कर सका। उसने बहुत सी औषधियाँ की किन्तु कोई भी लाभ नहीं हुआ। वह अपने से घृणा करने लगा और आत्म-हत्या करने का विचार किया। अन्त मे निराश होकर वह कूने साहब के पास गया और उनसे जल-चिकित्सा करने को प्रार्थना की। कूने साहब ने उसे धीरज दिया और वह उनके आदेश से जल-चिकित्सा करने लगा। १२ महीने मे स्नान और प्राकृतिक भोजन से उसकी नामरदी जाती रही और वह एक बार फिर जवान हुआ।

१४—दाँत के रोग, जुकाम, घेघा,

दाँतों के रोग—

दाँत यदि खोखले हो गये हो और उनमे पीड़ा होती हो तो यह समझना चाहिये कि रोगी के शरीर में विजातीय-द्रव्य काफी तादाद मे भरा है। जो विजातीय-द्रव्य सर की ओर जाता है उसी से यह पीड़ा पैदा होती है। दाँत धीरे-धीरे एक-एक करके गिर जाते हैं। दाँतो के गिरने से भी कभी-कभी दर्द होता है। वह दर्द विजातीय-द्रव्य के उफान के समय गरमी से पैदा होता है।

जल-चिकित्सा से कभी-कभी दाँतो की पीड़ा थोड़े समय के लिए बढ़ जाती है। कारण इसका यह है कि चिकित्सा से पुराने रोग का उभाड़ होता है। यही हालत गठिया रोग मे भी होती है। दाँतों का निकलवा देना बड़ी भारी मूर्खता है। ऐसा करना दाँत की पीड़ा को दूर करना नहीं बल्कि शरीर के एक आव-

श्यक अंग को काटकर फेंक देना है। ठंढे स्नान और स्वाभाविक भोजन इसकी चिकित्सा है। कभी-कभी सर का स्टीमबाथ और उसके पश्चात् हिपबाथ लेना चाहिए। शरीर को गरम करने के लिये खूब टहलना चाहिए। किसी-किसी हालत मे तो एक स्थानिक स्टीमबाथ और हिपबाथ से दर्द दूर हो जाता हैं। यदि अच्छा न हो तो स्नान बराबर लेना चाहिए।

अतएव दाँत और उनके सब रोग उसी समय अच्छे हो सकते हैं जब विजातीय-द्रव्य शरीर से निकल जाय और फिर न पैदा हो। जब दाॅत खोलले होकर गिर गये तो उनको फिर प्राप्त करना असम्भव है। जो दाॅत नहीं गिरे उनकी रक्षा करना चाहिए ताकि जितने समय तक वे चल सकें वे अपना काम करते रहे। जो दाॅत हिलरहे हों उनको निकलवा कर उनके स्थान मे बनावटी दाँत लगाये जा सकते हैं। दाॅत ही एक ऐसी हड्डियाँ हैं जो शरीर से एकदम निकलती हैं और उनमे किसी प्रकार की त्वचा ढकने के लिये नहीं रहती। विजातीय-द्रव्य के सड़न का प्रभाव इन हड्डियों पर विशेष रूप से पड़ता है। यदि उनमे त्वचा होती तो पहले त्वचा पर पड़ता और पीछे दाॅतो पर।

जुकाम—

हवा की नलियों में सामान्य जलन से उत्पन्न होता है। लोगों का कहना है कि यह सरदी मे हो जाता है। जो लोग विजातीय-द्रव्य से भरे हैं, सरदी उन्हीं को तंग कर सकती है किन्तु जो स्वस्थ हैं अर्थात् जिनका शरीर विजातीय-द्रव्य से खाली है उन्हे सरदी कभी नही लग सकती। जुकाम एक प्रकार से फेफड़ो के विकार को निकालते हैं इसलिये उसे 'रोकने की चेष्टा न करना चाहिए। इसमें ठंढे स्नान करना चाहिये और खुली हवा मे रहना चाहिए।

इनफ्ल्यूएनजा—(Influenza)

इस रोग में सिट्ज और हिपबाथ और कभी-कभी स्टीम बाथ लेना चाहिए। साथ ही स्वाभाविक भोजन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस रोग में हाज़मा कमजोर हो जाता है। पेड़ में विजातीय-द्रव्य अधिक जमा रहता है। इसलिए कभी-कभी ज्वर आ जाता है।

गले की बीमारियाँ—

गले की बीमारियाँ आजकल क्रमशः बढ़ रही हैं। जब फेफड़ों मे विजातीय-द्रव्य संचित हो जाता है तो ये बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, ये माता-पिता से प्राप्त दोषों से भी उत्पन्न हुआ करती हैं। इन बीमारियों से विजातीय-द्रव्य जोश खाता हुआ नीचे से उठता है। धड़ और सर के बीच का हिस्सा यानी गरदन तंग होती है इसलिये वह रुकावट उपस्थित करती है। इसलिए गरदन को उसका परिणाम पहिले भोगना पड़ता है।

गले की बीमारियों को जल्द या देर में अच्छा होना विजातीय-द्रव्य की कमी या अधिकता पर निर्भर है। यदि विजातीय-द्रव्य पैतृक हुआ तो कई वर्ष भी लग सकते हैं किन्तु सफलता अवश्य मिलती है।

घेंघा—

घेंघे का रोग पहाड़ी स्थानों में और मुख्य-मुख्य स्थानों मे विशेष रूप से होता है। यह रोग उन भारी-भारी बोझों के कारण होता है जिसे पहाड़ी अपनी पीठ पर लादकर ले जाते हैं। भारी बोझ उठाने से घेंघे का रोग उत्पन्न हो सकता है किन्तु इसके अन्य कारण भी है और वे अत्यन्त आवश्यक हैं। पहाड़ का साफ पानी प्रायः बुरा प्रभाव उत्पन्न करता है। मिट्टी और चट्टानों पर लगातार बहने के कारण यह प्रायः धातुओं को

(सीसा तांबा) लेता चलता है, और मनुष्य के शरीर में विकार उत्पन्न करता है। यदि आप थोड़ा पहाड़ी पानी लीजिए और उसे एक बरतन में रख दीजिए तो आप तह में कोई वस्तु बैठी हुई देखेंगे। यह वस्तु पेट के भीतर जाकर विशेष अंग में पैठ जाती है और घेंघा उत्पन्न करती है।

उन लोगो को घेंघा नहीं होता जो स्वाभाविक भोजन करते है और जिनका रहन सहन स्वाभाविक होता है। किन्तु जिनका भोजन स्वाभाविक नहीं है। या जिनका रहन-सहन स्वाभाविक नही है उनका विजातीय-द्रव्य ऊपर को जोश खाकर उठता है और गले मे इकट्ठा होता है जिसको घेंघा कहते हैं। घेंघा जब बाहर की ओर होता है तो दर्द नहीं होता, हॉ बोझा अवश्य मालूम होता है और बेचैनी मालूम होती। यह घेंघा खतरनाक भी नहीं होता, किन्तु जब सूजन से फेफड़ों पर असर पड़ता है तो बीमारी भयानक हो जाती है।

यह ख्याल करना भूल है कि ताजा, बर्फीला पानी आरोग्य दायक है। जल मे मिश्रित पदर्थों का रहना पानी के भारी होने का काफी प्रमाण है। सूर्य्य की रोशनी मे बहता पानी और मेह का पानी स्वास्थ्य के लिए सब से अच्छे जल हैं। भारी और ताजे पानी में कोमल वृक्ष या फूल नहीं पनपते। इस पानी का दोष सूर्य्य की गरमी से ही दूर हो सकता है!

इस बीमारी में सिट्ज बाथ बहुत फायदा करते है।

१५—आँख और कान की बीमारियाँ

ये दोनों अङ्ग बड़े आवश्यक हैं। प्रायः लोग कहते हैं कि ये बीमारियॉ केवल बाह्य कारणो से उत्पन्न होती हैं। उनको इस बात पर विश्वास नही होता कि इन बीमारियों का कारण वास्तव में बड़ा गहरा है। जल-चिकित्सा की दृष्टि से ये सब बीमारियॉ भीतर की पुरानी खराबियो से पैदा होती हैं। डिफ-

थीरिया, खसरा, स्कारलेट बुखार के सदृश रोगों से या टीका से ये रोग उत्पन्न होते हैं। शरीर मे विजातीय-द्रव्य मौजूद रहता है। वह उन रोगों से सम्बन्ध रखता है जो नेत्र या कान में प्रगट होते हैं। जो आँख और कान की बीमारियों से दुखित है वह अन्य बातों में आरोग्य नहीं रह सकता।

जब विजातीय-द्रव्य कानो में चला जाता है तो कानों की बारीक नलियों में रुकावट पैदा हो जाती है। कान का पर्दा प्राय: फट जाता है या इतना ढीला पड़ जाता है कि उसमें शब्द की लहर नहीं पैदा हो सकती। इस ढङ्ग से कान के मध्य भाग में जलन उत्पन्न होती है। यदि विजातीय-द्रव्य का दबाव नीचे से अधिक होता है तो मवाद बहने लगता है। यदि मवाद की चिकित्सा स्वाभाविक ढङ्ग से न की गई तो रोग बढ़ जाता है और आदमी बहरा हो जाता है। जितना ही अधिक प्रयत्न दवाओ से कान को अच्छा करने का किया जायगा उतनी ही अधिक खराब दशा कान की होती जायगी।

जिन लोगोंने जल-चिकित्साका अध्ययन अच्छी तरह किया है उन्हे यह बात माननी पड़ेगी कि कान का बहना, जुकाम, सुजाक और पेशाब से सफेदी निकलने का एक ही कारण है। ये सब रोग उस विजातीय-द्रव्य से पैदा होते है जो शरीर के भीतर छिपा पड़ा रहता है और जोश खाता रहता है। जोश खाने से मवाद या कफ बनता है। इससे झिल्लियों में जलन भी उत्पन्न होती है। भयानक दशाओं मे इससे बड़े बड़े फोड़े भी निकल सकते हैं।

आँखो की बीमारियों की भी ठीक यही दशा होती है। विजातीय-द्रव्य क्रिस्टेलाइनलेन्स को भर देता है, और उसे कमजोर बना कर आँखों की रोशनी कम कर देता है। यही मायोपिया (कम दिखलाई पड़ने) का कारण है। विजातीय-द्रव्य

यदि और भीतर घुसता चला गया तो वह आँखों की बड़ी रग को खराब कर देता है और उससे स्याह मोतियाविन्द पैदा हो जाता है।

भूरा मोतियाविन्द भी उसी प्रकार उत्पन्न होता है। क्रिस्टे-लाइन लेन्स (आँख का एक विशेष अंग) के ऊपर एक धुंधला परदा पड़ जाता है। यह परदा वास्तव में विजातीय-द्रव्य है। धुंधला परदा पड़ने की दशा धीरे-धीरे चिरकाल में उत्पन्न होती है। इसी कारण यह भूरा मोतियाविन्द प्रायः बूढ़े लोगों को हुआ करता है।

हरा मोतिया विन्द—विजातीय-द्रव्य के जोश के कारण नेत्र के ढेले पर अधिक तनाव होता है। प्रायः आइरिस का एक भाग काटकर अच्छा करने का प्रयत्न किया जाता है। आँखें इस प्रकार के काटने से दोष युक्त हो जाती हैं और रोग ज्यों का त्यों बना रहता है।

एक वस्तु का दो दिखलाई पड़ना—

लेन्स,पुतली या लेन्स और पीले भाग के बीच में विजा-तीय-द्रव्य के संचित होने से यह रोग होता है। कूने साहब ने इस रोग से पीड़ित सैकड़ो मरीजों को जलचिकित्सा से अच्छा किया है।

तिरभंगापन (Squinitng)

नेत्र के डेले को घुमाने वाली रगों में विजातीय-द्रव्य के संचित होने से यह रोग उत्पन्न होता है। इन रगों मे से किसी एक रग में विजातीय-द्रव्य संचित हो जाता है और उसकी हरकत को नष्ट करके उसे मोटी और तनी हुई बना देता है जिससे वह अपना काम करने मे असमर्थ हो जाती है। उसका लचीलापन जाता रहता है। वह विशेष रग अन्य रगों से छोटी पड़ जाती है। सारी आँख अपने स्थान से खिंचकर दूसरे स्थान पर चली जाती है और उसमें तिरभंगापन पैदा हो जाता है। आँखों से

विजातीय-द्रव्य हटाकर तिरभंगापन दूर किया जा सकता है।

आँख की चाहे जो भी बीमारी हो, कारण सब का वही विजातीय-द्रव्य होता है। आँख के प्रत्येक रोग में विजातीय-द्रव्य की दशा भिन्न-भिन्न होती है, इसलिए आँख के प्रत्येक रोग के लक्षण भी भिन्न होते हैं। विजातीय द्रव्य संसार के लोगों में दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है, इसलिए आँखों की नवीन-नवीन बीमारियाँ भी उत्पन्न हो रही हैं और साथ ही अनेकों डाक्टर भी बढ़ रहे हैं।

आँख की चाहे जितनी बीमारियाँ बढ़ें, किन्तु जल-चिकित्सक के लिए चिन्ता की बात नहीं होती। उसकी दृष्टि में सबका कारण विजातीय-द्रव्य ही होता है। विजातीय-द्रव्य को निकालने की आयोजना कर दी जाय तो ये सब बीमारियाँ निमूंल हो जाती हैं। ठंढे स्नान और स्वाभाविक भोजन द्वारा विजातीय-द्रव्य सरलता से निकाला जा सकता है और आँखें आरोग्य की जा सकती हैं। कभी-कभी स्टीम बाथ भी लेने की आवश्यकता पड़ती है।

कान और आँख की तात्कालिक बीमारियाँ तो बहुत जल्द अच्छी की जा सकती हैं किन्तु जब वे बीमारियाँ पुरानी पड़ती हैं तो उनको अच्छा करने के लिए समय और अध्यवसाय की आवश्यकता पड़ती है।

लिपजिग नगर के व्यापारी का एक लड़का था। ६ वर्ष की आयु से उसे गरमी निकल आई थी। उसकी बाईं आँख में सूजन आ गई थी जिससे उस आँख के नष्ट होने का डर लग रहा था। उसके शरीर में विजातीय-द्रव्य भरा हुआ था। उसी से उसे गरमी हो गई थी और आँख में सूजन भी आ गई थी। उसके आँख की बड़ी दवा की गई किन्तु कोई लाभ न हुआ। आँखों की ज्योति धीरे-धीरे करीब-करीब जाती रही। निराश

होकर उसका पिता लड़के को कूने काहब के पास ले गया। उनके आदेश से जल-चिकित्सा प्रारम्भ की गई। ठंढे स्नान दिये गये और स्वाभाविक भोजन कराया गया। ६ सप्ताह में उसकी आँख अच्छी हो गई और उसको गरमी जाती रही।

अब यहाँ एक कान के रोगी की दशा बतलाई जाती है। ६७ वर्ष के आदमी का कान बहने लगा। बायें कान का वह करीब-करीब बहरा हो गया था। वह कूने साहब के पास गया और जल-चिकित्सा करने की उसने इच्छा प्रकट की। कूने साहब ने चेहरा देखकर निर्धारित किया कि बीमारी बदहजमी से पैदा हुई है। कूने साहब ने दो-तीन सिट्ज़बाथ लेने को कहा और स्वाभाविक भोजन करने का आदेश किया। इसके अतिरिक्त उससे कहा गया कि शरीर में खूब पसीना लाया करो। १७ दिनों में उसकी हालत बहुत सुधर गई और ३१ दिनों में वह बिल्कुल चंगा हो गया।

१६—"स्त्रियों के रोग"

स्त्रियों के शरीर की बनावट पेचीदा होने के कारण उनके जननेन्द्रिय सम्बन्धी अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं जिनसे उनको बड़ी वेदना होती है। उनके मासिक धर्म से, गर्भकाल में बच्चा उत्पन्न होने के समय, बालकों को दूध पिलाने के समय खराबियाँ उत्पन्न होती ही हैं इनके अतिरिक्त अधिक काम-चेष्टा और भोजन की अधिकता से भी नाना प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं।

हिन्दुस्तान में परदे में रहने के कारण भी स्त्रियों का स्वास्थ्य विशेष रूप से खराब रहता है। उनको न तो काफी अच्छी हवा मिलती है और न खुली हवा में व्यायाम करने का कोई अवसर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पुरुषों की असावधानी के कारण स्त्रियों के इतने बच्चे उत्पन्न हैं कि उनके शरीर

अल्पायु में ही जर्जर होने लगते हैं। मेरी समझ में जितना स्वास्थ्य हिन्दुस्तान की स्त्रियों का गिरा हुआ है उतना गिरा हुआ स्वास्थ्य कदाचित किसी देश की स्त्रियो का नहीं है।

हिन्दुस्तान के शहरों मे रहने वाली स्त्रियों की दशा तो शोचनीय है। वे प्रायः क्षयरोग और प्रसूत की बीमारी से पीड़ित रहती हैं। इसके विरुद्ध गाँव को रहने वाली स्त्रियाँ तब भी बहुत काफी तन्दुरुस्त है।

स्त्रियाँ स्वभाव से ही बड़ी लजीली होती हैं, इसलिए वे अपना रोग किसी से कहती नहीं। स्त्रियों को चाहिये कि वे अपने रोग को न छिपावें और जिस समय कोई रोग उत्पन्न हो उसी समय उसकी चिकित्सा करें।

पाश्चात्य देशों में स्त्रियों ने जल-चिकित्सा को अपनाया है और उससे काफी लाभ उठा रही हैं। अभी हिन्दुस्तान में स्त्रियो का ध्यान जल-चिकित्सा की ओर नहीं गया। हमें पूर्ण आशा है कि हमारी बहनें और हमारी मातायें एक बार जल-चिकित्सा का अनुभव करेंगी और फिर जीवन में उससे लाभ उठाती रहेंगी।

मासिक धर्म का ठीक-ठीक न होना:—

जिन स्त्रियों को मासिक धर्म ठीक रूप मे होता है उनमें बच्चा पैदा करने की शक्ति वर्तमान है। जब तक उनको गर्भ नहीं रहता तब तक रुधिर का प्रवाह जारी रहता है। इस रुधिर के प्रवाह में न तो कोई पीड़ा होती है और न कोई बेचैनी मालूम होती है। यदि कोई पीड़ा या बेचैनी हो तो समझना चाहिये कि स्त्री के शरीर में विजातीय-द्रव्य मौजूद है।

स्वस्थ स्त्री के मासिक धर्म का सम्बन्ध चन्द्रमा से होता है। उसका मासिक धर्म ठीक पूर्णिमा में होना चाहिये और तीन या चार दिन तक जारी रहना चाहिए। यदि स्त्रियों को पूर्णिमा के एक दो दिन पहले या पीछे मासिक धर्म न हो तो यह समझ

लेना चाहिये कि उनके पेड़ू में विजातीय-द्रव्य का बोझ स्थित है। मासिक धर्म पूर्णिमा से जितना आगे चलकर होगा उतना ही स्त्री के पेट में विकार होगा। यदि स्त्री को दो सप्ताह मे या तीन सप्ताह में मासिक धर्म होवे तो समझना चाहिये कि उस स्त्री के पेट मे विजातीय-द्रव्य बहुत ही अधिक है।

मासिक धर्म के समय स्त्री और नौजवान लड़की की अधिक देख-रेख करनी चाहिये। इस समय मे स्त्री को क्रोध न करना चाहिये और हर प्रकार की उत्तेजना देनेवाली बातो से बचना चाहिये। यही हाल गर्भवती स्त्रियों का भी होता है। उन्हे भी शान्ति होनी चाहिये और हर एक उत्तेजिक बात से बचना चाहिये क्योंकि इन बातो का असर पेट के बच्चे पर पड़ता है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि विजातीय-द्रव्य से ही मासिक धर्म मे व्यतिक्रम पैदा होता है। यदि हम ठंढे स्नान द्वारा और स्वाभाविक भोजन द्वारा उनकी पाचन-शक्ति को बढ़ा दें और उनके पेड़ू को ठंढा रक्खें जिससे उनको पाखाना साफ़ हो सके तो मासिक धर्म ठीक हो सकता है। मासिक धर्म के समय में जो रुधिर निकलता है वह स्त्री के शरीर की सफाई करता है किन्तु गर्भवती हो जाने पर वही रुधिर गर्भ के बच्चे का पोषण करता है। सबसे नाजुक दिन गर्भवती स्त्री के लिये पूर्णिमा के समीपवाले दिन होते हैं, जिस समय प्रायः स्वस्थ स्त्रियों को मासिक धर्म होता है।

एक गर्भवती स्त्री थी जो चूहों से अधिक डरती थी। एक दिन एक चूहा उसकी नंगी बाँह पर से होकर दौड़ा। इससे स्त्री इतनी भयभीत हुई कि उसी का उसे रात में स्वप्न भी दिखलाई पड़ता था। छः महीने के बाद जब बच्चा पैदा हुआ तो उस बच्चे की भुजा पर एक स्थान चूहे के आकृति का भी था और उसमे चूहे की तरह बाल भी लगे हुए थे।

एक स्त्री को ऐसा बच्चा पैदा हुआ जिसका मुँह एक कान से दूसरे कान तक फटा हुआ था। वह पैदा होते ही मर गया। उस स्त्री ने बहुरूपिये को एक समय देखा था जिसका मुँह एक कान से दूसरे कान तक फटा हुआ था। यह विचार गर्भ के समय में उसके मस्तिष्क में नाचता रहा और इस वास्ते उसी प्रकार का उसे बच्चा भी पैदा हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विचारों का असर गर्भ पर अत्यन्त अधिक पड़ता है। यदि गर्भ के समय पर स्त्री दुखी रहती है तो बच्चा दुखी स्वभाव का पैदा होगा और यदि वह स्त्री प्रसन्न चित्त है तो लड़के का स्वभाव भी प्रसन्न चित्त होगा।

गर्भपात—

गर्भाशय में विजातीय-द्रव्य इकट्ठा हो जाने से गर्भपात होता है। विजातीय-द्रव्य से गर्भाशय में गरमी और दबाव पैदा होती है। इस गरमी और दबाव को गर्भाशय रोक नहीं सकता और इसलिये वह गरमी को निकाल बाहर करता है। जल-चिकित्सा से भीतरी दबाव और भीतरी गरमी कम होती है और विजातीय-द्रव्य निकल जाता है। अतएव फिर गर्भपात होने की शङ्का शेष नहीं रह जाती।

बाँझपन—

बहुत-सी स्त्रियाँ ऐसी है जो देखने में बड़ी मोटी ताजी होती हैं किन्तु उनके बच्चा नहीं होता। वे बच्चा न होने पर आश्चर्य प्रकट करती हैं। यह उनकी भारी भूल है। उनको नहीं मालूम कि उनकी बच्चेदानी विजातीय द्रव्य से भर गई है।

कुछ स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो डाक्टरों को बुलाकर पिचकारी लगवाती हैं या नाना प्रकार को दवाये खाती है। हिन्दुस्तान में कुछ स्त्रियाँ बच्चों के लिये देवी और देवताओं की पूजा करती फिरती है किन्तु इनसे उनको किसी प्रकार की सहायता नहीं

मिल सकती। मुझे शोक है कि स्त्रियाँ असली तत्त्व की ओर न जाकर इतना दुःख उठाती हैं।

एक स्त्री को विवाहित हुए ८ वर्ष हो चुके थे। उसको कोई बच्चा नहीं हुआ था। उसने बहुत-सी औषधियों का सेवन किया किन्तु कोई लाभ न हुआ। वह कूने साहब के पास गई और उसने अपनी दशा बतलाई। कूने साहब ने उससे कहा कि यदि तुम दो या तीन हिप और सिट्ज बाथ लो, स्वाभाविक भोजन करो और अपना रहन-सहन ठीक रक्खो तो तुम्हारे बच्चा हो सकता है। उस स्त्री ने कूने साहब के आदेश का पालन किया। परिणाम यह हुआ कि कुछ महीनों मे वह गर्भवती हुई और आगे चलकर उसके एक तन्दुरुस्त बालक पैदा हुआ।

स्तनों का जख्मी होना और दूध का न उतरना—

स्त्रियो के स्तनों में दूध का पैदा होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि माँ का दूध बच्चे का स्वाभाविक भोजन है किन्तु शोक है कि स्त्रियों की एक अधिक संख्या ऐसी है जो काफी तौर पर अपने बच्चों को दूध नहीं पिला सकती। वास्तव मे ऐसी माताओं को बच्चा पैदा करने का कोई अधिकार नहीं है। क्या कभी पशुओं में हम ऐसी बात पाते है कि वे अपने बच्चों को दूध नहीं पिलाते हों ? ऐसा कभी देखने में नहीं आता तो मानवीय स्त्रियों में ही यह बात क्यों पाई जाती है ? कोई न कोई कारण अवश्य होना चाहिए। एक कारण यह होता है कि गर्भवती होने और दूध पिलाने के पहिले स्त्रियो के स्तन बड़े-बड़े हो जाते हैं। जिन स्त्रियो के स्तन बड़े होते हैं वे या तो बच्चे को काफी दूध नहीं पिला सकती या उनके स्तनों के सरों पर घाव हो जाते है। स्तनो का बड़ा होना इस बात को प्रकट करता है की स्त्री का शरीर विजातीय-द्रव्य से भरा हुआ है।

दूसरी ओर हम ऐसी स्त्रियों को भी देखते हैं जो बिना तक़लीफ के बच्चा पैदा करती है और बिना किसी तकलीफ के बच्चे को दूध पिलाती हैं। उनके स्तन बड़े नहीं होते। इसका कारण यह है कि उनका शरीर विजातीय-द्रव्य से खाली रहता है। ठंढे स्नान, स्वाभाविक भोजन, स्टीम बाथ और स्वाभाविक रहन-सहन से स्तनों के जख्म मिट सकते हैं और स्त्रियों के स्तनों में काफी दूध भी पैदा हो सकता है।

एक स्त्री के स्तनों में सूजन पैदा हुई। उसके घराने के डाक्टर ने नश्तर देने की सलाह दी किन्तु उसने नश्तर लेने से अस्वीकार कर दिया। अन्त में वह कूने साहब के पास गई और जल-चिकित्सा करने की प्रार्थना की। कूने साहब ने रात में आध घन्टे के चार सिट्ज बाथ लेने को कहा। दूसरे दिन उसको आराम मिला। कुछ और दिनों के पश्चात् उसका सारा दर्द दूर गया और वह पूर्ण स्वस्थ हो गई।

प्रसूत का ज्वर—

हर साल हजारों स्त्रियाँ इस ज्वर की शिकार होती हैं। इस रोग के प्रकट होने से यह जाहिर होता है कि स्त्री का शरीर विजातीय-द्रव्य से भरा हुआ है। जब शरीर में विजातीय-द्रव्य उफान खाते लगता है तो ज्वर उत्पन्न होता है। अतएव उन्हीं स्त्रियों को प्रसूत का ज्वर होता है जिनके पेट में बच्चा पैदा होने के बाद विजातीय-द्रव्य काफी तादाद में शेष रह जाता है। अतएव यदि हम चाहते हैं कि स्त्रियों को प्रसूत ज्वर न हो तो सिट्ज बाथ से उनके आन्तरिक विजातीयद्रव्य को निकाल बाहर करना चाहिए।

सुखपूर्वक बच्चा पैदा करने के अनन्तर एक स्त्री को कठिन प्रसूत ज्वर हुआ। दाई ने गरम पट्टियों का प्रयोग किया। किंतु उनसे कोई लाभ न हुआ। उसको इस बात का ज्ञान ही न था

कि स्त्री के शरीर के भीतर विजातीय-द्रव्य के उभाड़ से गरमी उत्पन्न हुई है और वह गरमी केवल ठंढक पहुँचाने से ही शांति हो सकती है। वह स्त्री कूने साहब के पास गई और जल-चिकित्सा करने की प्रार्थना की। कूने साहब ने उसे ३ सिट्ज बाथ ५ से ३० मिनट तक के लेने का आदेश किया। १८ घंटे में बुखार कम हो गया और एक सप्ताह में वह बिलकुल चंगी हो गई। इन स्नानों से उसका स्वास्थ्य भी पहले से अच्छा हो गया।

इसी प्रकार एक दूसरी स्त्री को भी बच्चा जनने के पश्चात् प्रसूत ज्वर हुआ। बडे-बड़े डाक्टरों ने उसकी औषधि की किंतु कोई लाभ न हुआ। डाक्टरों के एक सप्ताह के इलाज से उस स्त्री को सन्निपात हो गया। इसके पश्चात् लोगों ने तार देकर कूने साहब को बुलवाया। कूने साहब ने एक-एक घंटे के सिट्ज बाथ दिये जिससे स्त्री का सन्निपात चला गया और वह बात-चीत करने लगी। उसने कुछ दिन तक जल-चिकित्सा जारी रक्खी और उसके बाद वह बिलकुल चंगी हो गई।

बिना दर्द के गर्भवती स्त्री का बच्चा पैदा करना—

यदि हम जंगल में घूमनेवाले पशुओं की तरफ ध्यान दें जिनके शरीर आधुनिक सभ्यता से विकृत नहीं हो गये हैं तो हम देखेंगे कि ये पशु जब बच्चा पैदा करते हैं तो उनको किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती और न ये पशु हमारे घर की स्त्रियों की तरह एक स्थान में करीब एक महीने पड़े रहते हैं। उनको बच्चा पैदा होने को होता है तो वे पहले से किसी बात की चिन्ता भी नहीं करते।

प्राय: ऐसा देखा गया है कि बच्चा पैदा करते ही वे अपने रोज का काम करने लग जाते हैं। एक हरिणी थी, वह जब दो बच्चों को पैदा कर रही थी कि इतने में एक शिकारी आ धमका। वह भाग गई किन्तु गोली से मारी गई। जाँचने पर

मालूम हुआ कि उसके पेट में एक बच्चा और था। पेट काट कर बच्चा निकाला गया और वह जीवित निकला।

किंतु स्त्रियों को बिना कष्ट के बच्चा नहीं होता। ऐसी कोई स्त्री देखने में नहीं आती जिसकी सहायता के लिये एक दाई के बुलाने की आवश्यकता न पड़े। वास्तव मे बच्चा प्राकृतिक ढंग की जगह अप्राकृतिक ढंग से पैदा होता है और अपनी जान बचाने के लिये स्त्री को बिस्तरे पर बहुत समय तक पड़ा रहना पड़ता है।

प्रकृति के विरुद्ध काम करने से इन दशाओं का गहरा कारण अवश्य होगा। यह दशायें वास्तव में प्राकृतिक नियमों के तोड़ने से उत्पन्न होती हैं। मनुष्य शरीर के अप्राकृतिक क्रम में हाथ डालकर प्रकृति के नियमों का उल्लङ्घन करता है और इसी वास्ते उसे नाना प्रकार की आपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

तो फिर यदि मनुष्य प्राणी बरबादी के समीप आ जाय तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है। जब मनुष्य प्रकृति के रास्ते से अलग होने लगा तो उसका शरीर विजातीय-द्रव्य से भर गया और फिर उसके कारण उसमें नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हुईं। हम लोगों ने बैकुंठ को अपने हाथ से गँवा दिया। हमारा बना-बनाया स्वास्थ्य प्रकृति के नियमों के उल्लङ्घन से बिगड़ गया।

बालक उसी हालत में स्वस्थ हो सकता है जब की उसका पिता विजातीय-द्रव्य से खाली हो। प्रकृति पेट के बच्चे का पोषण माता-पिता के स्वच्छ से स्वच्छ परमाणुओं से करती है किन्तु पैतृक विजातीय-द्रव्य का असर बालक पर पड़ता ही है और इसलिये वह रोगी दशा में संसार मे जन्म लेता है। अब यदि अस्वाभाविक भोजन और रहन-सहन से विजातीय-द्रव्य और भी बढ़ता गया तो उसके सब अंग कमजोर पड़ जायेंगे और

बच्चा जब बड़ा होगा तो उसमें भी सब पैतृक बीमारियाँ उत्पन्न हो जायँगी अतएव यदि विजातीय-द्रव्य शरीर से निकाल दिया जाय तो बच्चा अत्यन्त स्वस्थ हो सकता है।

यही बात स्त्री के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है। यदि स्त्री लड़कपन से स्वाभाविक ढंग से रहे और वह एक ऐसे पुरुष के साथ ब्याही जाय जो स्वाभाविक ढंग से रहता हो तो इसमे कोई शक नहीं कि उस स्त्री को बच्चा उत्पन्न करने में कुछ भी दर्द न होगा और उसकी जान आजकल की स्त्रियों की तरह खतरे में न पड़ेगी।

प्रकृति में हम यह बात कभी नहीं पाते कि कोई भी पशु बच्चा पैदा करने के बाद बदसूरत हो जाता हो किन्तु मनुष्य प्राणी में चेहरे का भद्दा हो जाना बहुत देखने मे आता है। जब स्त्री बच्चा पैदा करती है तो उसका चेहरा एक दम पीला पड़ जाता है। ऐसा मालूम होता है जैसे उसने एक मास का उपवास किया हो।

मनुष्य प्राणी को छोड़कर प्रकृति में हम कभी नहीं देखते कि गर्भवती होने पर भोग की इच्छा उसमे हो। इसके विरुद्ध वह भोग के लिये एक दम अस्वीकार करेगी। वास्तव मे भोग का ध्येय केवल प्रसन्नता ही नहीं है बल्कि गर्भाधान है। मैथुन के समय इस हालत में खून का बहाव जननेन्द्रिय की तरफ होता है और वह पेट के बच्चे को भारी हानि पहुँचाता है। इस मैथुन से स्त्री के स्वास्थ्य पर भी बड़ा धक्का पहुँचता है, क्योंकि प्रकृति गर्भाशय को हरएक हानिकारक वस्तु से बचाये रहना चाहती है। यदि प्रकृति के इस नियम का उल्लङ्घन किया गया और गर्भ की हालत मे भोग किया गया तो स्त्रियों को नाना प्रकार की बीमारियो का सामना करना पड़ता है।

गर्भ के दिनों मे जो गर्भवती स्त्रियों को पीड़ा होती है वह

वास्तव में प्रकृति के इस नियम के उल्लङ्घन का परिणाम है। स्त्री को प्रातःकाल कै होती है, उसका जी मिचलाता है, दाँत में पीड़ा होती है, ज्वर रहता है, उदासी रहती है। शरीर में सुरसुराहट पैदा होती है, और नाना प्रकार की चीजों के खाने का उसका जी चाहता है। कुछ दशाओं में यह दशायें पैतृक विजातीय-द्रव्य से भी गरान्न हो सकती हैं। किसान लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि जब पशुओं की कामेच्छा अधिक बढ़ जाती है तो उनमें नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है। यही हालत मनुष्य की भी है। मनुष्य-प्राणी जब आवश्यकता से अधिक मैथुन करने लगता है तो उसको क्षय रोग विशेष रूप से होता है।

स्वस्थ मनुष्य की भोगेच्छा रोगी मनुष्यों की भोगेच्छा से भिन्न होता है। वे तमाम गन्दे विचारों से अलग रहते है और केवल सन्तान उत्पत्ति के लिये भोग करते हैं। न तो मनुष्य के लिये आवश्यक ही होना चाहिये और न बहुत समय व्यतीत हो जाने पर उसे अधीर होना चाहिये। स्वस्थ मनुष्य स्वाभाविक भोजन और स्वाभाविक रहन-सहन से अपना इंद्रियो को अपने वश में रखता है। जो लोग ब्रह्मचारी रहते हैं वे हमेशा स्वस्थ और सुखी रहते है।

हर जगह हम यह सुनते है कि अमुक स्त्री का गर्भपात हुआ और अमुक स्त्री को समय से पहिले बच्चा उत्पन्न हुआ। कहीं अमुक बच्चे के हाथ नहीं और कही अमुक बच्चे का सर बड़ा होता है। यह सब क्यो होता है? वास्तव में इसका कारण विजातीय-द्रव्य है जो माता के शरीर मे रहता है और बच्चे मे भी आ जाता है।

जो बच्चा गर्भ में रहता है वह अपने स्थान से माता के विजातीय-द्रव्य के कारण या गर्भ के समय भोग के कारण हट

जाता है। विजातीय-द्रव्य के कारण स्त्री की जननेंद्रिय जब संकुचित हो जाती है तो उसे अधिक पीड़ा का सामना करना पड़ता है। यदि कहीं बच्चे मे भी विजातीय-द्रव्य उतर आया तो वह एक बड़ा सर लेकर पैदा होता है। इस बडे सर के कारण भी बचा पैदा होने के समय माता को बड़ा कष्ट होता है। स्त्री के जननेन्द्रिय के रग-रग में इतना विजातीय-द्रव्य भर जाता है कि वहाँ की सब रगें कठोर हो जाती हैं और लच नही सकतीं। परिणाम यह होता है कि बच्चा पैदा होने के समय जब उन नसों को फैलाना चाहिये तो वह अपनी जगह पर ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। जिससे स्त्री को बड़ा कष्ट होता है।

तो फिर यदि विजातीय-द्रव्य रहते हुये बचा उत्पन्न करने में स्त्रियों को कष्ट हो तो इसमें कौन सी आश्चर्य की बात है। वास्तव मे स्वस्थ स्त्री को पीड़ा का डर बिलकुल होना ही न चाहिये। जिस स्त्री को बच्चा होने में अधिक कष्ट होता है उसको अन्तरात्मा उसको बता देती है कि मैंने न मालूम कितनी बार प्रकृति के नियमों का उल्लंघन किया है और उसी का मैं यह फल भोग रही हूँ।

मनुष्य जाति चिरकाल से गिरती जा रही है और इसलिए जो तकलीफ बच्चा पैदा होने के समय स्त्री को होती है उसे कोई रोक नहीं सकता। कूने साहब की राय है कि स्त्री को प्रकृति पर छोड़ देना चाहिये। प्रकृति से बढ़कर स्त्री की सहायता और कोई दूसरा डाक्टर नहीं कर सकता। जब प्रसूत पीड़ा हो तो प्रसूत पीड़ा को शान्त करने के लिए सिट्ज बाथ और पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी से बढ़कर और कोई आरोग्य औषधि नहीं है। मिट्टी की पट्टी घन्टे या दो घंटे में बदल देना चाहिए और उसके ऊपर ऊन का कपड़ा बांधना चाहिये। इससे बच्चा बहुत जल्द हो सकता है।

जल्द बाजी से डाक्टरों को बुला कर चीड़ फाड़ कराने के कारण हजारों स्त्रियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। यदि डाक्टरों को न बुला कर स्त्रियाँ प्रकृति की शरण जाँय तो उनका जीवन अत्यन्त सुखमय हो सकता है। यदि बिना यंत्र की सहायता से स्त्री को बच्चा नहीं पैदा होता तो इसमें दोष स्त्री का है क्योंकि जिस समय से वह गर्भवती होती है उसी समय से वह बिना कष्ट के बच्चा पैदा करने का प्रबन्ध करने लगती है, किन्तु अंत मे उसे सफलता नही होती। स्वाभाविक भोजन और सिट्ज बाथ ये ही दो ऐसे शस्त्र हैं जिनके लगातार प्रयोग से सुगमता से संतान उत्पन्न हो सकती है। सिट्ज बाथ एक ऐसा स्नान है जिसकी प्रशंसा जितनी की जाय उतनी कम है, इसके गुण अनेक है और कूने साहब के ईजाद के किये हुए स्नानों मे बड़ा महत्व रखता है।

अतएव जिन स्त्रियों को स्वस्थ संतान उत्पन्न करना है उन को स्नान और स्वाभाविक भोजन द्वारा अपने शरीर को विजातीय-द्रव्य से पहले से ही शुद्ध कर लेना चाहिये।

एक स्त्री थी जिसको बहुत समय से गठिया का रोग हो गया था। उसके पेड़ू में विजातीय-द्रव्य अधिक संचित था। वह पाँच बच्चों को जन्म दे चुकी थी और हर बच्चे के जन्म के समय उसको कठिनाई का सामना करना पड़ा था। दो तीन रोज पीड़ा होने के बाद तब कहीं बच्चा पैदा होता था। जब छठा बच्चा गर्भ में आया तो वह कुने साहब से मिली और उनकी सम्मति से वह प्रति दिन कभी दो कभी तीन सिट्ज बाथ लेने लगी। परिणाम इसका यह हुआ कि छठा बच्चा बड़ी आसानी से उत्पन्न हुआ और उसको पीड़ा नही हुई।

बच्चा उत्पन्न होने के पीछे का प्रबन्ध—

यह बतया या जा चुका है पशु जब बच्चा पैदा करता है

तो वह उसी रोज से इधर-उधर घूमने लगता है। एक मनुष्य प्राणी ही ऐसा है जिसे सौरी से बाहर निकलने में कई दिन लगते हैं। पहले नौ दिन का समय रक्खा गया था और अब डाक्टर लोग बारह दिन तक रहने की सम्मत्ति देते हैं। हिन्दुस्तान के घरों की स्त्रियाँ कराब-करीब एक महीना ले लेती हैं।

सौरी के भीतर बहुत दिन तक रहने से स्वास्थ्य को भारी धक्का पहुँचता है। शरीर के न हिलने-डुलने के कारण पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है और स्त्रियों को प्रायः कब्ज रहता है। साथ ही इसके जब तक गर्भाशय ठीक न हो जाय तब तक सौरी से बाहर निकलना भी हानिकारक है। अतएव सौरी के भीतर जितने समय की जरूरत हो उतने ही समय तक कम से कम रहना चाहिये।

कूने साहब ने एक बहुत ही सरल उपाय निकाला है जिसके अनुसार चलने से स्त्री जल्द से जल्द सौरी से निकल सकती है। वह यह है। स्त्री ज्योंही बच्चा पैदा कर सके त्योंही जितना वह आवश्यक समझे उतने ही समय तक आराम करे। अगर वह सो जाय तो और भी अच्छा है। तब उसे ७३° से ७७° फैरनहाइट पानी में सिट्स बाथ लेना चाहिये। स्नान के बाद पेड़ू में एक छिद्रदार सन की पट्टी बाँधना चाहिये। इस तरीके के भीतर के कोठो को काफी सहायता मिलती है और स्त्री में शक्ति आती है। अगर स्त्री की तबियत न भरे तो चीन-चार रोज बाद पट्टी बाँधना चाहिये और उसे तीन या चार सप्ताह तक बराबर बाँधना चाहिये। यदि और कोई आपत्ति न पैदा हो तो पट्टी का बाँधना काफी है किन्तु स्त्री को ज्वर मालूम हो तो सिट्ज़ बाथ लेते रहना चाहिये और मिट्टी की पट्टी बाँधना चाहिये। इससे बुखार दूर हो जायगा और शरीर में शक्ति आवेगी।

१७—फुटकर बीमारियाँ

फोड़ा—जब किसी स्थान पर फोड़ा निकलने को होता है तो वहाँ पर सूजन पैदा होती है और वह स्थान लाल लाल हो जाता है। तत्पश्चात् जब वह पकता है तो उसमें मवाद आ जाती है। प्रारम्भ में ठंढे पानी की पट्टी या मिट्टी का बैंडेज देना चाहिये, और पीछे केवल ठन्डे पानी की पट्टी साथ साथ हिपबाथ और सिट्जबाथ लेना चाहिये। खाने पीने का परहेज भी अत्यन्त आवश्यक है।

शीतला या चेचक—यह एक भयानक और छूत की बीमारी है। इसमें पहले जाड़ा देकर बुखार आता है और फिर शरीर भर में दर्द होता है। पेड़ू कमर और भुजदण्ड में विशेष-रूप से दर्द होता है।

यदि पाखाना साफ न होता हो तो सबसे पहले पाखाना होने का प्रबन्ध करना चाहिये यानी पेड़ू मे मिट्टी की पट्टी बाँधना चाहिये और एनीमा लेना चाहिए। इनके पश्चात् हिपबाथ और सिट्जबाथ लेना चाहिए। चेचक के रोगी को प्यास अधिक लगती है। इसलिए जब वह पानी माँगे तो ठंढा पानी बराबर पिलाते रहना चाहिये। भोजन का नियम पूरा रखना चाहिये। यदि चार-पाँच रोज तक केवल पानी ही पिया जाय तो और भी अच्छा हो। जब दाने मुर्झाने लगें और रोगी को भूख लगे तो केवल फल या मोटे आटे की रोटी या फल देना चाहिये। जब दाने बिल्कुल सूख जायँ तब उसे भर पेट भोजन देना चाहिए।

भगंदर—भगंदर की बीमारी कब्ज से पैदा होती है या जब मलद्वार में किसी प्रकार चोट लग जाती है तो उसके बहरी भाग मे भगंदर हो जाता है। जल-चिकित्सा मे बाहरी और भीतरी

भगंदर चिकित्सा एक ही है। इस बीमारी में एक सिट्ज़बाथ और एक हिपबाथ लेना चाहिये और कभी २ बीच में भगंदर के स्थान पर स्टीम बाथ। गुदा के द्वार मे कीचड़ का लेप करना चाहिये। ठण्ढे पानी के स्नान और कीचड़ के बैंडेज से भगंदर बहुत जल्द अच्छा होता है।

खसड़ा—(Eczema) यह बीमारी अधिक भोजन करने से होती है। अथवा यह बीमारी उन लोगों को होती है जो अधिक परिश्रम करते हैं और जिनका जीवन अनियमित होता है। घाव में गीले कपड़े या कीचड़ का बैंडेज बाँधना चाहिये और हिपबाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिये। सप्ताह में दो बार जखमी स्थान पर स्टीमबाथ और सनबाथ लेना चाहिये। पथ्य पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये।

दाद—यह बीमारी बहुतायत देखने में आती है। बहुत कम ऐसे पुरुष मिलेगें जिनको दाद न हुआ हो। इस बीमारी मे दाद के ऊपर मिट्टी का बैंडेज बाँधना चाहिए। और हिपबाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिये। सप्ताह में दो दिन स्थानिक स्टीम बाथ लेना चाहिए। भोजन हलका करना चाहिए।

जीभ के छाले—पेट में मल के संचित होने से यह बीमारी पैदा होती है। इसमे हिपबाथ और सारे शरीर स्नान के विशेष लाभकारी हैं। साफ मिट्टी से दाँत रगड़ना चाहिए और दिन भर में दस पन्द्रह बार ठण्डे पानी से कुल्ला करना चाहिए। पेड़ू मे ठण्डे पानी का प्रयोग या मिट्टी की पट्टी से दस्त बहुत जल्द होता है।

मसूड़ा फूलना—मुँह के भीतर खूब स्टीम बाथ लेना चाहिए। सिट्ज़बाथ और हिपबाथ लेना चाहिए। बलुही मिट्टी

से खूब दाँत मलना चाहिए। जहाँ दर्द हो वहाँ मिट्टी का लेप करना चाहिए।

पित्ती का उछलना—इसमें शरीर भर मे लाल २ चकत्ते पड़ जाते है और खूब खुजली पैदा होती है। शरीर भर में मिट्टी का लेप करना चाहिए और हिपबाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिए। भोजन हलका करना चाहिए।

पोते का बढ़ना—यह बीमारी कब्ज से पैदा होती है अतएव पेड़ू में मिट्टी की पट्टी बाँधना चाहिए। इसके पश्चात हिपबाथ और सिट्ज़बाथ लेना चाहिए। सप्ताह मे दो बार स्थानिक स्टीम बाथ लेना चाहिए। रात को गीला कपड़ा और उसके ऊपर ऊनी कपड़ा बाँध कर सोना चाहिए।

१८—लुई कूने द्वारा अच्छे किये हुए रोगी आरोग्यता विषयक रिपोर्ट तथा धन्यवाद के पत्र

जल-चिकित्सा कितनी लाभदायक है और इसके द्वारा कितने निराश रोगियों को भी आरोग्य लाभ हुआ है इसे दिखलाने के लिए यहाँ पर कुछ थोड़ी-सा आरोग्यता सम्बन्धी रिपोर्टें तथा धन्यवाद के पत्र जो कूने साहब के पास आये थे, प्रकाशित किए जाते है। इन पत्रो और रिपोर्टों में से अधिकतर बिना माँगे ही भेजे गए हैं। इन पत्रों के प्रकाशन का आशय यह है कि संसार देखे कि जल-चिकित्सा कितनी लाभदायक है, और उससे लाभ उठाये।

नरवस डेबिलिटी (पट्ठों की कमजोरी), नींद न आना अँतड़ियों की जलन, जिगर की पथरी

मिसेज आर 'R' को Nervous Debility (पुट्ठों की कमजोरी) हो गई थी। उन्हे रात-रात भर नींद न आती थी। आँतो में सख्त जलन रहा करती थी। भूख नहीं लगती थी और

जिगर की पथरी के कारण जिगर में पीड़ा होती थी। औषधियों और पिचकारी के बगैर उन्हें पाखाना नहीं होता था। प्रति मास उनका पेट बढता गया और धीरे-धीरे उनकी दशा बिगड़ती गई।

ऐसी शोकमय दशा में उन्होंने मेरी सहायता चाही। मैंने अपनी चिकित्सा रीति के अनुसार उन्हे दो से पाँच तक नित्य फ्रिक्शन बाथ, (friction baths) सप्ताह में एक दो स्टीम बाथ और मांस रहित भोजन दिया। पहले ही सप्ताह में उन्हें कुछ लाभ हुआ। दूसरे सप्ताह में उन्हें नींद भी आई, भूख भी खुली और पाखाना भी ठीक हुआ। तीसरे सप्ताह में पट्ठों की खराबी दूर हो गई। चौथे सप्ताह में उनका पेड़ू अपनी ठीक हालत पर आ गया। पाँच सप्ताह के पश्चात् जिगर की पथरियाँ खुलने लगीं। सातवें सप्ताह में रोगी भली भाँति निरोग हो गया।

फेफड़े की जलन, ठंढे पैर, आमाशय की व्याधि, जिगर के रोग और फैरिंग्रस की जलन।

Mr. H of L. ने जिनके फेफड़े में जलन थी, पैर ठंढे रहते थे, जिगर का रोग था और फैरिंग्रस की जलन थी, मेरी चिकित्सा का प्रारम्भ २७ वर्ष की आयु में प्रारम्भ किया। उनकी चिकित्सा करते समय पहले फ्रिक्शन हिप बाथ पर फिर फ्रिक्शन सिट्ज बाथ पर अधिक ध्यान दिया गया। अनुत्तेजक भोजन दिया गया। फल यह हुआ कि दूसरे ही दिन पाचन शक्ति मे आराम होने लगा। इसके पश्चात् धीरे-धीरे सभी रोगो में बराबर आराम होता रहा और तीन सप्ताह के पश्चात् उसके सारे रोग नष्ट हो गए। रोगी को यह देख कर बड़ा आचर्य हुआ कि उसके पैर बिना किसी अन्य दवा के रोग उत्पन्न होने के पहिले ही की भाँति गरम रहने लगे।

कमलवायु, दुर्बलता, कई प्रकार की शिरपीड़ा

लिपजिग निवासिनी मिसेज एल की युवती कन्या को कमलवायु का रोग हो गया था। जिससे उनके सिर मे पीड़ा रहा करती थी। कमजोरी के साथ ही आलस्य रहता था। काम करने को जी न चाहता था। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। आँखें पीली पड़ गईं और धीरे धीरे शरीर के सभी अंग पीले होते गये। ऐसा जान पड़ता था कि वह ज्वर से पीड़ित है। मैंने उसे अनुत्तेजक भोजन देना प्रारम्भ किया और तीन फ्रिक्शन बाथ सड़े हुए मादे को निकालने के लिए दिया। दो ही सप्ताह में कमलवायु पूर्ण रीति से जाती रही।

लुंजापन, लँगड़ापन—

१२ वर्ष की आयु का एसवाल जेड नामी बालक कड़ी सर्दी के कारण और खाँसी आने के कारण लुंजापन के रोग का शिकार हो गया। बहुत से वैद्यो ने अप्राकृतिक चिकित्सा करके उसके रोग को ऐसा खराब कर दिया कि उसका कूल्हा कड़ा हो गया और वह लगभग लँगड़ा हो गया। उसकी दाहिनी टाँग बाईं की अपेक्षा पतली और छोटी हो गई। मैंने उसे फ्रिक्शन बाथ दिए और अनुत्तेजक भोजन का सेवन कराया। शीघ्र ही उसे लाभ हुआ। केवल १५ दिन में ही वह थोड़ा बहुत चलने योग्य हो गया। एक महीने में उसका कूल्हा फिर मुलायम हो गया और लुंजेपन के सारे चिन्ह जाते रहे। ६ महीने में उसके दोनों पैर जो घट-बढ़ गए थे बिलकुल ठीक दशा मे आ गये।

सर्वाङ्ग दुर्बलता, कमर पीड़ा, खून की कमी, ठंढे हाथ पाँव

P स्थान के निकट W. निवासिनी मिसेज E. बहुत से रोगों में ग्रस्त और गर्भवती थीं। उनके शरीर में खून की कमी थी, कमर मे पीड़ा रहती थी और हाथ पाँव ठंढे रहते थे।

डाक्टरों की दवा से कुछ भी लाभ न होने पर उन्होंने मेरी शरण ली। मैंने उन्हे प्रतिदिन एक हिप बाथ, दो फ्रिक्शन सिट्ज बाथ और तत्पश्चात् धूप में तापना बतलाया। भोजन सादा और अनुत्तेजक करने की सलाह दी। छः महीने के पश्चात् वह मेरे पास फिर आई। उस समय वे भलीभाँति स्वस्थ थीं। एक मास पूर्व उन्हे बालक उत्पन्न हुआ था। इस बार पहिले की भाँति पुत्र प्रसव में भी उन्हें अधिक पीड़ा न हुई थी। बालक हृष्ट पुष्ट और आरोग्य था। वह खूब दूध पीता था।

गिल्टी का फोड़ा—

E नामवाली एक नव वर्ष की कन्या की गर्दन में बाईं ओर एक गिल्टी निकल आई। थोड़े ही दिनों में वह बढ़कर एक बड़े अंडे के समान हो गई। मैंने उसे रोज, आध-आध घंटे के पश्चात् हिप और सिट्ज बाथ लेने को कहा। सप्ताह में दो बार स्टीम बाथ भी लेने को कहा। साथ ही उचित आहार का प्रयोग बतलाया। तीन सप्ताह के पश्चात् उसे स्टीम बाथ अरुचिकर हो गया। उसका सिर फोड़े के कारण एक ओर को झुक गया था और वह उसे हिला-डुला न सकती थी। अस्तु, स्टीम बाथ के स्थान पर बर्दाश्त करने योग्य गर्म जल की गद्दियों का प्रयोग किया गया। ऐसा करने से कुछ दिनो मे दो छोटे-छोटे छिद्र मटर के दाने के समान प्रकट हुए और उनमे से पीब निकली। शीघ्र ही फोड़ा घटने लगा और एक महीने मे लड़की स्कूल जाने योग्य हो गई। पाँच सप्ताह मे उसे रोग का चिन्ह भी शेष न रहा। वह सरलता पूर्वक अपनी गर्दन को इधर-उधर हिला सकती थी।

स्तन व नाक का सर्तान

रोबेंटिस के रहनेवाले एक कसाई की स्त्री Mrs. S. के स्तन और नाक में रोग हो गया था। जब डाक्टरों से उसे कुछ भी

आराम न हुआ तो उसकी इच्छानुसार मैं उसे देखने गया। जब मैंने उसे देखा उस समय उसकी दशा बड़ी ही शोचनीय थी। स्तन के ऊपर एक इतना गहरा घाव था कि वह हाथ से ढँका नहीं जा सकता था। घाव सड़ गया था और दिन प्रति-दिन भीतर ही भीतर बढ़ता जाता था। उसकी नाक भी आधी नष्ट हो चुकी थी और माथे पर दो लाल रसौलियाँ हो गई थी जो फूटने ही पर थीं। मैंने भली भाँति उसकी जाँच करके आवश्यक सलाह दी जो अति सफल हुई। पहले रसौलियाँ लोप हो गईं। फिर स्तन को आराम हुआ। अन्त में उसकी नाक भी अच्छी हो गई। केवल ६ मास के थोड़े समय में उसे सब रोगों से छुटकारा हो गया।

टाँग पर खुले हुए घाव

बराजील निवासी स्कूल के एक मास्टर मिस्टर एफ के टाँगों पर खुले हुए घाव हो गए थे। उसके अच्छा करने के लिए उन्होंने अपना बहुत सा धन पानी की तरह डाक्टरों की चिकित्सा में बहाया परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। बल्कि ससय के साथ-साथ, धीरे-धीरे उनके घाव भी बढ़ते जाते थे और वे कुछ भी काम करने के योग्य न रह गये थे। दैवयोग मेरी "The new science of Healing" नामक पुस्तक उनके हाथ लगी। उचित रूप से चिकित्सा करने से शीघ्र ही वे अच्छे हो गए। अपने इस आरोग्यता के सम्बन्ध में उन्होंने सब बातें जर्मन के Tortcalegre समाचारपत्र में छपवाया।

मूत्राशय का रोग जलोदर-जिगर का रोग

पी स्थान के रहनेवाली मिसेज बी को गुर्दों का रोग-जलोदर-जिगर का रोग हो गया था। उनकी इच्छानुसार मैंने उनकी चिकित्सा की। दो हिप बाथ, एक फ्रिक्शन सिट्ज बाथ और स्वाभाविक भोजन मैंने उसके लिए नियत किये। जलोदर धीरे

धीरे आराम होने लगा। थोड़े ही दिनों में वह ऐसी चंगी हो गई कि उन्हें देखकर अनुमान भी नहीं किया जा सकता था कि वह कभी बीमार रही होगी।

पेचिश

मिसेज W नाम की एक अमेरिकन लेडी चार वर्ष से पेचिश से परेशान थी। जब अनेक दवाइयाँ कर चुकने पर भी उसे लाभ न हुआ तो उसने मेरी चिकित्सा प्रारम्भ की। मैंने उसे प्रतिदिन तीन बार शीत पहुँचानेवाला स्नान, और प्रति सप्ताह तीन स्टीम बाथ बताए। उसके लिए शीघ्र पचनेवाला भोजन बतलाया। तीन सप्ताह के पश्चात् वह बिल्कुल नीरोग हो गई।

आँत की जलन

डी निवासी मिस्टर एम की आँत में बहुत दिनों से जलन रहा करती थी और इसीसे उसे एक भयङ्कर रोग उत्पन्न हो गया था। सितम्बर मास के आरम्भ में रोगी ने मेरी चिकित्सा शुरू की। शीघ्र ही आँत की जलन जाती रही। उसकी पाचन-शक्ति ठीक होगई। उसके पेट में बहुत दिनो से जो विकार उत्पन्न हो गया था वह धीर-धीरे निकलता रहा और दशा धीरे-धीरे अच्छी होती रही। दो महीने मे जब उसका तौल १५ पौंड घट गया तो उसे पूरा-पूरा आराम मिल गया और उसकी तन्दुरुस्ती ठीक हो गई। फिर उसके पसीजनेवाले पैर ठीक हो गए।

ऋतु का भारी दोष, गर्भाशय से रुधिर बहना

लिपजिग निवासिनी मिसेज W को आठ वर्ष से अनियमित मासिक धर्म होने की शिकायत थी। कभी-कभी तो मासिक धर्म बिलकुल ही बन्द हो जाता था और कभी-कभी उसमें रुधिर इतना अधिक बह जाता था कि वह बिलकुल निर्बल हो गई थी। पहले तो उसने अपने नगर के डाक्टर S से दवा कराई परन्तु जब कुछ लाभ न हुआ तो उसने मेरा इलाज शुरू

किया। मैंने उसे प्रतिदिन फ्रिक्शन सिट्ज बाथ लेने और साधारण भोजन करने की सलाह दी। इसका आश्चर्य-जनक प्रभाव हुआ। थोड़े ही समय में रुधिर प्रवाह बन्द हो गया और साथ ही मासिक धर्म भी नियम-पूर्वक होने लगा। उनकी निर्बलता भी समय पाकर दूर हो गई।

थैली के समान रसौली-कानों की झनझनाहट

मिसेज एल के जो कि G. Z. की रहनेवाली थीं, बाँये कान के नीचे एक थैली की तरह की रसौली अखरोट के बराबर थी। इसीसे उसके कान में झनझनाहट होती थी। तीन वर्ष तक वे सभी प्रकार की चिकित्सा करती रहीं परन्तु जब कुछ लाभ न हुआ तो वह मेरे पास आईं। मैंने उन्हें फ्रिक्शन बाथ, स्वाभाविक भोजन, और नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करने का आदेश दिया। आरम्भ के कुछ ही स्नानों के पश्चात् उनके कानों की झनझनाहट जाती रही और छः सप्ताह में वे भली-भांति चंगी हो गईं।

नपुंसकता

S निवासी मिस्टर जी पूरे नपुंसक हो गए थे। उन्होंने मेरी बतलाई हुई रीति से फ्रिक्शन हिप बाथ और फ्रिक्शन सिट्ज बाथ बारी-बारी से अपने घर पर लिए और निरामिष भोजन किया। छः सप्ताह में उनका रोग जाता रहा।

बालकों का कब्ज

मिस्टर क्यू नाम के एक पादरी का एक छः महीने का बालक कब्ज के रोग में फँस गया था। उसे तीन बार पीने के लिए उबला हुआ दूध दिया जाता था जिससे उसके शरीर में बहुत सा विजातीय-द्रव्य भर गया था और उसे बुखार भी आने लगा था। इसलिए वह बहुत कमजोर हो गया था। लड़के के पिता ने मेरी पुस्तक ध्यान पूर्वक पढ़ी और उसी के अनुसार

बालक को दिन में दो बार हिप बाथ देने आरम्भ किये। जल बहुत गर्म लिया जाता था जिससे कि उसका प्रभाव धीरे-धीरे हुआ। पाँच सप्ताह के उपरान्त बालक की पाचन शक्ति शुद्ध हो गई और वह नीरोग होकर बलवान और मोटा ताजा हो गया। बालक को भोजन के लिए बिना उबाला दूध और जई के आटे की लपसी दी जाती थी।

डिफथीरिया, सुर्ख ज्वर

कुछ दिन पहले मुझे मिसेज एस के यहाँ उनके एक वर्ष के बालक को देखने के लिए बुलाया गया। मैंने देखा कि बालक डिफथीरिया (सुर्ख ज्वर) से पीड़ित है। भाप के स्नान देने का यंत्र न होने पर भी किसी प्रकार उसे स्टीम बाथ दिया। फिर उसके शरीर को एक कम्बल से अच्छी तरह ढक दिया। जब रोगी को अच्छी तरह पसीना आ गया तो उसे एक एक फ्रिक्शन हिपबाथ दिया गया और उसके पेड़ू को उस समय तक मला गया जब तक उसकी गरमी दूर नहीं हो गई। जब उसका रुक रुककर सांस आना ठीक हो गया तो भय जाता रहा। पाँच दिन के भीतर ही बालक बिलकुल नीरोग हो गया। भयानक डिफथीरिया को आराम करने की यही रीति है।

बहरापन, शब्द के यन्त्र में रुकावट, आवाज का बैठ जाना

एक बार T टी निवासी सिस्टर एम ने मुझसे अपने दाहिने कान के बहरेपन की बाबत सम्मति ली। उस बेचारे को बहिरे-पन के कारण बोलने में कठिनता होती थी। जब मैंने उसके रोग की परीक्षा की तो मुझे उसकी मुखाकृति द्वारा मालूम हुआ कि विकारी द्रव्य (बुरी वस्तु) का बोझ सामने की ओर है। अतः मुझे अच्छे फल की आशा हुई। मैंने इलाज प्रारम्भ कर दिया। दस दिन के पश्चात् उस मनुष्य ने मुझे समाचार दिया कि वह अपने बहरे कान से भी सुन सकता है। साथ ही आवाज

का बैठना और हलक के अन्दर की खुरखुराहट भी कम हो गई। चार सप्ताह के निरन्तर यत्न से उसका रोग दूर हो गया और वह अच्छी तरह सुनने लगा।

साँस की नली में कठिन जलन

लिपजिग निवासी मिस्टर K को पट्ठों की निर्बलता का रोग हो गया था। धीरे-धीरे यह रोग इतना बढ़ गया था कि उनकी साँस की नली में जलन हो गई थी। अनेक उपाय करने पर भी उसका रोग शान्त न हुआ। अन्त में न्यू साइन्स आफ हीलिंग की सहायता से वह बिलकुल नीरोग हो गया। नीरोग हो जाने पर रोगी ने स्वयं कहा—"मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ है।"

चेहरे में पट्ठों की पीड़ा, नींद का न आना, आमाशय का फैल जाना

आर निवासी मिस्टर आर० बी० नाम के एक सज्जन जिनकी आयु ३९ वर्ष की थी, चार वर्ष से स्नायु की पीड़ा से ग्रस्त हो रहे थे। उन्होंने बहुत से वैद्यों की सम्मति ली परन्तु कुछ लाभ न हुआ। अन्त में मैंने परीक्षा की और जाना कि यह रोगी आमाशय के फैल जाने के रोग में ग्रसित है। मैंने चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। एक ही सप्ताह के भीतर उसकी पाचनशक्ति ठीक हो गई। तीन सप्ताह के पश्चात् वह सुख से सोने लगा। दो माह में वह नीरोग हो गया और उसके रूप रंग में भी बहुत कुछ उन्नति हुई।

कंठमाला, दूर की वस्तुओं का अच्छा नज़र आना, गिल्टी पर वर्म

मिस H. G. नाम की पाठशाला में अध्यापिका थीं। उन्हें क्लोरोसिस और कंठमाला का रोग हो गया था। अंत में उन्हें गिल्टियाँ और रसौलियाँ निकल आईं। एक मित्र ने उनका

ध्यान मेरी चिकित्सा की ओर दिलाया। उन्होंने छः महीने तक मेरी बताई हुई विधि से चिकित्सा की। प्रति दिन १५ मिनट से लेकर २० मिनट तक दो फ्रिक्शन सिट्ज बाथ लिए और और बातों में प्राकृतिक नियमानुसार जीवन बिताया। जिसका फल यह हुआ कि उनकी पाचन शक्ति सुधर गई। फिर एक-एक करके सारी गिल्टियाँ भी अच्छी हो गईं। साथ ही फेफड़ो का रोग भी दूर हो गया। जब सारी गिल्टियाँ अच्छी हो गईं तो आँख का रोग भी अच्छा होने लगा। एक वर्ष के भीतर ही वे भली भाँति देखने लगी और फिर उन्हे चश्मे की आवश्यकता न रही।

बच्चों का कब्ज, नींद न आना, नेत्रों का सूज आना

एक बार एक मेम साहबा अपने दूध प ती बच्ची को लेकर मेरे पास आईं। उस लड़की को कब्ज हो गया था और उसे नींद न आती थी। उसकी माता को देखने से मालूम हुआ कि उसे अजीर्ण का रोग है। साथ ही उसके नेत्र मे जलन भी रहती थी। चूँकि बच्ची अपनी माँ का दूध पीती थी इसलिए आवश्यकता थी कि पहले उसकी (माँ की) बीमारी दूर की जाय। अस्तु, माँ को रोज एक फ्रिकशन सिट्जबाथ और हिप बाथ लेने के लिये कहा गया। भोजन सादा और अनुत्तेजक बताया गया। शुद्ध वायु मे टहलने की अनुमति दी गई। अस्तु शीघ्र ही आराम हुआ। लड़की को तो दो ही दिन की चिकित्सा के उपरान्त नींद आने लगी और उसका कब्ज दूर हो गया। एक सप्ताह में माता की अजीर्णता दूर हो गई और उसके आँखों की जलन भी जाती रही।

नियत समय पर कै होना, फेफड़ों की खराबी

L. निवासी मिस्टर M. को बारह वर्षों से कै होने का रोग था। प्रति सप्ताह नियत समय पर एक या दो कै अवश्य हो जाती थी। उन्होंने अनेकों औषधियों का प्रयोग किया

परन्तु लाभ कुछ भी न हुआ। जब उन्होंने मेरी रीति द्वारा हिप बाथ और फ्रिक्शन सिट्ज बाथ लेना प्रारम्भ किया और साधारण स्वाभाविक भोजन करने लगे तो उन्हे आशा से अधिक लाभ हुआ। उनकी पाचन शक्ति बिलकुल ठीक हो गई। चार ही सप्ताह के भीतर वमन का आक्रमण बन्द हो गया। अन्त में वह मुझे धन्यवाद देने आए और अपने पुनर्जीवित होने का बिश्वास दिलाया।

होठ का सर्तान—

७२ वर्ष के एक वृद्ध पुरुष को होठ का रोग था। यह रोग बहुत पुराना हो गया था। दिनों दिन होठ के ऊपर सर्तान (Cancer) बढ़ता चला जाता था और लगातार उसके थूक बहुता था। इस प्रकार सर्तान और थूक बहने से उसे बड़ी पीड़ा होती थी। मैंने उसकी चिकित्सा प्रारम्भ की। शीघ्र ही लाभ हुआ। थूक निकलने की भयानकता का अन्त पहले ही दिन हो गया और होठ धीरे-धीरे अच्छा होने लगा। ग्यारह दिनों में उसका सर्तान ऐसा असाध्य और भयानक रोग अच्छा हो गया।

नाक में खून जम जाना, पाचन शक्ति की मंदता

जेब नामक स्थान में बी नाम का एक अत्तार रहता था। उसे बीस वर्ष से आमाशय की कमजोरी और अजीर्ण का रोग था। उसने इन रोगों से छुटकारा पाने के लिए इतनी अधिक दवाइयों का सेवन किया था कि उसके कारण उसके सब दाँत भी खराब हो गये थे। साथ ही उसकी नासिका और वायु की नालियों में खून जम गया था जो किसी प्रकार भी दूर न होता था।

मिस्टर बी ने मेरी चिकित्सा रीति से दवा करनी प्रारम्भ की। एक ही सप्ताह में उन्हें इतना लाभ हुआ जितना लगातार बीस वर्ष की चिकित्सा से भी न हुआ था। धीरे-धीरे खून का जमना बन्द हो गया और रोगी निरोग हो गया। उसके

मेरी चिकित्सा पर ऐसा विश्वास हुआ कि मुझसे विदा होते समय वह मुझसे कहने लगा कि अब अत्तारी की दूकान पर और उसकी दवाओं पर से मेरा विश्वास उठ गया। मेरा विश्वास हो रहा है कि अत्तारी की दूकान केवल विष ही फैलाती है। अब मैं शीघ्र ही अपने औषधालय को बन्द कर दूँगा।

सैंट. वाईटस डैंस (कोरिया या निद्रा का न आना)

एक स्थान में रहनेवाला जी नाम की एक मेम साहिबा की पाँच साल की छोटी लड़की को निद्रा नहीं आती थी। न तो वह किसी भोजन को पचा सकती थी, न वह चल फिर सकती थी और न कोई वस्तु ही पकड़ सकती थी। हर एक प्रकार की चिकित्सा के प्रयोग का फल जब अच्छा न हुआ तो मेरी चिकित्सा प्रारम्भ की गई। मैने उसे हिप बाथ और फ्रिक्शन सिट्ज बाथ लेने की अनुमति दी और साथ ही शुद्ध वायु में व्यायाम करने और यथार्थ भोजन करने का निर्देश किया। जिसका फल यह हुआ कि केवल एक ही सप्ताह के भीतर वह चलने फिरने के योग्य हो गई।

चिकित्सा बराबर जारी रही और शीघ्र ही उसकी पाचन-शक्ति पुनः बलवती हो गई और उसके सारे रोग दूर हो गये। वह पूर्ण स्वस्थ और बलवती हो गई।

बहरापन, गूंगापन, दिमाग में खून जम जाना

एल नामक स्थान में एक एस नाम की मेम साहबा रहती थीं। उसकी चार वर्ष की एक कन्या गूँगी और बहरी थी। उस की माता का कहना था यह रोग इसे टीका लगाने के कारण हुआ है। यद्यपि माँ ने अपनी पुत्री को नीरोग करने के लिए असंख्य दवाइयों का प्रयोग किया था परन्तु कन्या के रोग में कुछ भी कमी न हुई। मैंने उस लड़की की परीक्षा करके मालूम किया कि उसके भीतर विकारी द्रव्य का बोझ बहुत ही अधिक

है। साथ ही मैंने जाना कि उसके दिमाग में खून भरा हुआ है। मैंने पुत्री की माँ को बताया कि उसे प्रतिदिन एक फ्रिक्शन बाथ दिया जाय, शुष्क स्वाभाविक अनुत्तेजक भोजन दिया जाय। उसे शुद्ध हवा में व्यायाम कराया जाय और सोते समय उसके कमरे की सारी खिड़कियाँ खोल दी जाँय।

ऐसा ही किया गया। दो सप्ताह में खबर मिली कि लड़की की हालत बहुत अच्छी है वह कुछ कुछ सुनने लगी है। चार सप्ताह में वह पूर्ण रीति से अच्छी हो गई। सुनने और बोलने भी लगी। इस प्रकार उसका बहरा और गूँगापन दूर हो गया।

सख्त कब्ज़

एफ स्थान के रहनेवाले डाक्टर एफ की स्त्री को २० वर्ष का पुराना कब्जा का रोग था। यह रोग किसी भी औषधि से अच्छा न होता था। जब वह मेरी सम्मति लेने के लिए आई तो उसकी बातों से मालूम होता था कि उसे ऐसा विश्वास हो चुका है कि अब वह अच्छी न होगी। फिर भी उसने मेरी बताई हुई रीति से दवा करना प्रारम्भ किया। एक ही सप्ताह में स्वाभाविक भोजन करने से उनकी पीड़ा को बहुत आराम हुआ। थोड़े ही दिनों में वह भली-भाँति अच्छी हो गई। मैंने उसे बिना छने आटे की रोटी और खट्टे फल खाने के लिए बताया था।

हलक की जलन, मूत्राशय व गुर्दे का रोग, इन्द्रिय सम्बन्धी रोग

प्रिय मिस्टर कुहने,

अपने पत्र में आपने चिकित्सा सम्बन्धी जो सम्मति मुझे दी थी वह अति फलदायक प्रमाणित हुई। मूत्राशय और गुर्दों के रोग अब अच्छे हैं। हलक की जलन बिलकुल जाती रही।

अब मैं पहले की अपेक्षा प्रसन्न और स्वस्थ हूँ। आपकी सम्मति के लिए अनेक अनेक धन्यवाद।

ग्राम वर्ग से } आपका दास—
E. M.

घुटने के जोड़ की जलन, अति व्याकुलता, मस्तिष्क का रुधिर से भर जाना, दिल में चर्बी का बढ़ जाना, जिगर का रोग, अँतड़ियों की बीमारी।

प्रियवर,

थोड़े ही दिन हुए मेरे दाहिने घुटने के जोड़ की गोलाई जलन के कारण २२ इंच हो गई थी। मैं आपके चिकित्सालय में भरती हुआ। साधारण भोजन फ्रिक्शन हिपबाथ, धूप के स्नान (Sunbath) से शीघ्र ही मेरे घुटने की गोलाई १७ इंच रह गई। फिर मैंने आपकी पुस्तक The new Science of healing द्वारा पूर्ण आरोग्यता प्राप्त की। फिर आपकी चिकित्सा रीति द्वारा मुझे व्याकुलता, दिमाग का खून से भर जाना, हृदय के पट्ठों में चर्बी का चढ़ जाना, गुर्दे और जिगर के रोगों से छुटकारा मिला। जिगर के रोग को डाक्टर असाध्य बतलाते थे। मुझे आँखों का रोग भी होने लगा था परन्तु वह भी जाता रहा।

अस्तु, यह पत्र जो आपकी सेवा में विना माँगे भेजा जा रहा है इसे आप किसी भी सरकारी व कानूनी मतलब के लिए काम में ला सकते हैं। धन्यवाद।

द्वारीना बहेलिया } आपका दास
कार्ल एच

अत्यन्त सिर पीड़ा

प्यारे मिस्टर कुहने,

कदाचित् आपको स्मरण होगा कि मैं अपनी पुरानी सिर की

पीड़ा की चिकित्सा के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुई थी। आपकी सेवा में पहुँचने के दूसरे दिनों मेरे सिर में एक बार जोर का दर्द हुआ था परन्तु उस समय से अब तक मुझे फिर कभी सिर-पीड़ा नहीं हुई। इसके लिए मैं आपको बहुत दिन से धन्य-वाद देना चाहती थी, परन्तु किन्हीं कारणों वश न दे सकी थी। अस्तु आज मैं ईश्वर और आपको भी कोटिशः धन्यवाद देती हूँ। मैं इस समय प्रसन्न हूँ और बराबर आपकी बताई हुई रीति से भोजन और स्नान करती हूँ। मेरी पुत्री की ओर से प्रणाम।

बेलफ़ील्ड } आपकी सच्ची दासी
मिसेज़ ई—एच

फेफड़ों में मिलके दाने, हृदय का दोष, दांतों का खराब होना अँतड़ियों की जलन, बवासीर, हिमेच्यूरिया, अर्थात् मूत्र के संग रुधिर आना।

डियर मिस्टर कुह्ने,

दवा करते करते अन्त में एलोपैथिक चिकित्सकों ने मेरे रोग को असाध्य बतला दिया और उसी के साथ संभव था कि मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाती, परन्तु मेरे पुत्र ने मेरा ध्यान आपकी चिकित्सा रीति की ओर दिलाया। मैंने भी "डूबते को तिनके का सहारा"-की भांति आपकी चिकित्सा प्रारम्भ की। आपके स्नान और भोजन ने आश्चर्य-जनक प्रभाव दिखलाया। पाँच ही मास में बवासीर, फेफड़े के दोष, पेशाब में रुधिर आना, अँतड़ियों की जलन आदि सभी रोग जाते रहे। आपको धन्यवाद है।

आपकी पुस्तक से मिस्टर एफ के हृदय के दोष भी नष्ट हो गये। एक कन्या जिसकी आयु केवल ६ वर्ष की थी caries में ग्रस्त हो रही थी। उसकी टाँगों और भुजाओं से हड्डियों के

टुकड़े निकल चुके थे। आपके लिखने के अनुसार उस लड़की को स्टीम बाथ और फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ दिये गये। शीघ्र ही अच्छी होकर वह अब एक सुन्दर लड़की हो गई है। मैंने आपकी चिकित्सा को फैलाने का यहाँ भरसक प्रयत्न किया है। मैं हृदय से आपको धन्यवाद देती हूँ।

ग्रोस-हिलिग्सफील्ड } आपकी दासी—
डाक्टर यु की की

आतशक अर्थात् सिफलिस, अनिद्रा, शिर का रोग

प्यारे मिस्टर कुह्ने,

मैंने सात आठ वर्ष पारे से चिकित्सा की और गंधक से तीन बार स्नान किया परन्तु उसने रोग को शरीर से निकालने के बजाय उसे दबा दिया। जिसका फल यह हुआ कि मुझे सिर-दर्द होने लगा। नींद का अभाव रहने लगा और मैं पागल सा बन गया। ऐसी दशा में मैंने आपकी चिकित्सा रीति का सहारा लिया। केवल तीन स्नानों से ही मुझे आराम मिला और नींद आने लगी। मैंने अपने शरीर को निरोग बनाने के लिए चिरकाल तक आप की बताई चिकित्सा को जारी रक्खा। अब मैं नये सिरे से आनन्द भोग रहा हूँ।

वास्तव में आपकी चिकित्सा रीति की जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। मैं आपकी कृपा के लिए सदैव अनुगृहीत हूँ।

लिपिज़िग } आपका दास
मुक

मूत्राशय का रोग, गुर्दों की जलन, बवासीर के मस्से, जलोदर

प्रियवर,

मैंने ऊपर लिखे हुए रोगों की चिकित्सा भिन्न-भिन्न औषधियों से की परन्तु तनिक भी लाभ न हुआ, दिन-दिन मेरा कष्ट बढ़ता

गया। अन्त में जब मैंने आप की चिकित्सा प्रारम्भ की तो मुझे लाभ हुआ। अब मैं इस दशा में हूँ कि कोई भी मनुष्य मुझे देख कर यह नहीं कह सकता कि मैं किसी भी समय बुरी दशा में रहा हूँगा। मैं प्रसन्नता पूर्वक आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

लिपजिग }

आप का दास
जी० एच०

स्मरण शक्ति की निर्बलता, पेट का बढ़ जाना, फेफड़े के रोग, जख्त पट्ठों की निर्बलता, बहरापन, कंठ के रोग, तीव्र ज्वर

प्यारे मिस्टर कुहने,

मैं बाँए कान से बहरी थी परन्तु अब अच्छी तरह सुन लेती हूँ। यहाँ तक कि घड़ी की टिक टिक भी सुनाई पड़ती है। पहले मुझे जरा सा काम करने पर भी थकावट मालूम होने लगती थी और टहलते-टहलते फेफड़ो की कमजोरी के कारण मै हाँफने लगती थी पर अब मेरे शरीर में ये लक्षण नहीं रह गए। मेरी स्मरण शक्ति नष्ट हो गई थी। जरा-जरा सी बात पर मुझे क्रोध आता था और व्याकुलता मालूम होती थी परन्तु आप की चिकित्सा द्वारा मुझे सारे रोगों से छुटकारा मिल गया। आप की चिकित्सा मे जादू का सा असर है।

एक बार मैं कन्या को अपनी दासी बनाकर गाँव में ले लेगई। वहाँ उसके पाँव सूज आए। सिर में पीड़ा रहने लगी और ज्वर हो आया। अब न वह हिल डुल सकती थी न कोई काम कर सकती थी। मैंने उसे एक हिप बाथ और फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ दिए। तीन ही दिन में वह चंगी हो गई।

पीटर्सगॅव }

मिसेज ए० ई०

कठिन शिर पीड़ा

प्यारे मिस्टर कूहने,

आपकी बताई हुई रीति द्वारा स्नान करने से मेरी १ ।। कठिन शिर पीड़ा जाती रही । मै जब तक जिन्दा रहूँगी आपके इन स्नानो का प्रचार करूँगी । ईश्वर करे आपकी शुभ चिकित्सा चिरकाल तक जारी रहे । मै आप को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझती हूँ ।

लिपजिग } आपाकी दासी
मिसेज एस० डबल्लू

मिर्गी के दौरे, मुर्छा, खून की कमी

प्रियवर,

नौ वर्ष की आयु में मेरी कन्याको दौरे आने लगे । डाक्टरो ने बतलाया कि उसमे खून की कमी है । मैने बहुत दिन तक डाक्टरो की दवाइयाँ की । परन्तु मर्ज घटने के बजाय बढ़ता गया । अन्त मे डाक्टरो ने रोग को असाध्य बता दिया परन्तु आपकी चिकित्सा रीति द्वारा मेरी पुत्री के सारे रोग जड़से जाते रहे । मै और मेरे सबन्धी आपके सदैव कृतज्ञ रहेंगे ।

वोहेमिया } आपका दास
एफ० एच०

जुकाम, ज्वर

प्यारे मिस्टर कूहने,

मैंने सख्त जुकाम और तीव्र ज्वर की दशा मे आपकी चिकित्सा रीति की परीक्षा अपने ऊपर की । जितना शीघ्र मुझे लाभ हुआ उस पर मुझे आश्चर्य होता है । मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपकी चिकित्सा रीति का अधिक से अधिक प्रचार होगा । मेरे पास आपको धन्यवाद देने के लिए शब्द नहीं हैं ।

होमबर्ग } आपका दास
चार्ल्स डबल्यू, तत्ववेत्ता
(Doctor of Philosophy)

काली खाँसी अर्थात् कुक्कुर खाँसी

प्यारे मिस्टर कुह्ने,

मेरे बालक को जोकि केवल १४ सप्ताह का था काली खाँसी हो गई थी। मैं आपकी चिकित्सा रीति से उसे दवा देने लगा और आपकी पत्र द्वारा आई हुई अनमोल सम्मतियों पर ध्यान रखा। उसे फ्रिक्शन हिप बाथ दिया गया और उसकी माँ उसे अपने पास सुलाने लगी ताकि उसे खूब पसीना आए। १२ दिन में बहुत आराम हो गया और खाँसी धीरे-धीरे जाती रही। मैं जोर और दावे से कहता हूँ कि आपने काली खाँसी के सम्बन्ध में जो कुछ अपनी पुस्तक में लिखा है वह बिलकुल ठीक है। आपकी चिकित्सा द्वारा हमारा बालक शीघ्र आरोग्य हो गया इसके लिए मैं और मेरी स्त्री आपको हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आपकी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

हार्जबर्ग } आपका सच्चा दास
ई० के०

न्यूरस थेनिया, न्यूरेलजिया, पट्ठों की पीड़ा, मिर्गी

प्यारे मित्र,

जब कि ड्रेसडेन नगर के दो प्रसिद्ध चिकित्सक मेरे रोग को असाध्य बतला चुके थे उस समय मुझे आपकी चिकित्सा से आराम हुआ। मैं तीन महीने से न्यूरस थेनिया, न्यूरेलजिया और मिर्गी के रोग में ग्रसित था। आपकी चिकित्सा से मैंने शीघ्र ही आरोग्य लाभ किया। धन्यवाद।

ड्रेसडन } आपका दास
एच० बी०

शिर का रोग, नेत्र का रोग, रुधिर न्यूनता, बेचैनी, पाँव की नसों का खिंच जाना, साधारण बलहीनता साँस लेने में पीड़ा

मुझे लड़कपन से ही जब मैं स्कूल में पढ़ती थी, सिर पीड़ा

का रोग हुआ। १५ वर्ष की उम्र में एक बार मैं गिर पड़ी जिससे मेरे पाँव की नसें खिंच गईं और आगे चलकर इन्हीं के कारण मुझे चलना फिरना दूभर हो गया। इसी बीच में मेरी शिर पीड़ा भी बढ़ गई। मेरी आँखें भी खराब होने लगीं। किसी काम में मन न लगता था। बुखार आने लगा और ऐसा मालूम होने लगा कि मैं अन्धी हो जाऊँगी।

इस दशा में मैं मिस्टर लुई कुहने के कारखाने में गई। एक ही स्नान के पश्चात् मुझे चैन मालूम पड़ा। मैंने बराबर स्नान जारी रखे और साधारण भोजन किया। पाँच महीने की चिकित्सा के पश्चात् मैं बहुत कुछ नीरोग हो गई हूँ। अब मैं अच्छी तरह देख सकती हूँ मेरे पाँव भी इतने अच्छे हो गए कि मैं बिना किसी कष्ट के चल फिर सकती हूँ। मैं अपने जीवनदान देने वाले को धन्यवाद देती हूँ और चाहती हूँ कि सब रोगी आप की चिकित्सा से लाभ उठावें।

लिपजिग } (मिसेज) मेरी आर०

गठिया की पीड़ा

प्यारे मिस्टर कुहने,

मैं पिछले साल मई के महीने से बराबर गठिया की पीड़ा से दुखी था। बीच में कुछ आराम रहा परन्तु नवम्बर में मेरे ऊपर रोग का भयंकर हमला हुआ। डाक्टरों ने मुझे दक्षिण देश में जाकर रहने की सलाह दी। इस व्याकुल दशा में मेरी स्त्री ने आपकी सलाह ली। मैं आपकी उस अमूल्य सलाह के कारण सदैव आपका अनुगृहीत हूँ।

मैंने साधारण भोजन और आपके बताए हुए स्नान प्रारम्भ किये। स्नान करने से पहले तो रोग के चिह्न एक-एक करके ऐसे प्रकट हुए कि मुझे भय होने लगा। परन्तु शीघ्र ही मेरा भय झूठा साबित हुआ और मैं अच्छा होने लगा। मेरे मूत्र

का रङ्ग गेंहुआ था। केवल चौदह दिनों में मैं काम करने लगा। धीरे-धीरे मैं नीरोग हो गया और अब मैं पूर्ण रीति से स्वस्थ और प्रसन्न हूँ। मैंने दृढ़ विचार कर लिया है कि जहाँ तक हो सकेगा आपकी चिकित्सा रीति का प्रचार करूँगा। मैं हृदय से आपको धन्यवाद देता हूँ।

आप का दास
जूलियस एस०
राजकीय सनद रखनेवाला
अध्यापक

उदर-पीड़ा, क्षुधा न लगना, चक्कर आना, हृदय के दोष, फेफड़े का दोष, निर्बलता

मेरी स्त्री जिसकी आयु इस समय ६१ वर्ष की है कई वर्षों से और विशेषत: सन् १८६० से चक्कर आ जाने (दौरा आना) पेड़ू की पीड़ा, भूख न लगना और कमजोरी के रोगों मे फँसी थी। डाक्टरों के इलाज का कुछ भी असर न हुआ और सन् १८६१ में उसकी ऐसी दशा हो गई कि उसे अनेकों चक्कर आने लगे। उसकी पाचन शक्ति ऐसी मन्द हो गई कि कई सप्ताह तक वह शय्या पर से न उठ सकी। ऐसी दशा में मैंने होमियोपैथी की दवा की परन्तु वह भी कारगर न हुई।

अन्त में मैने अपनी स्त्री को लुई कुहने के चिकित्सालय में भेज दिया। वहाँ उसे दो वार फ्रिक्शन सिट्ज बाथ तथा साधारण भोजन दिया जाता था। एक ही सप्ताह में उसकी पाचन-शक्ति सुधर गई और पीड़ा भी घट गई। कुछ ही सप्ताह में चक्कर के दौरे व साँस लेने की कठिनता और अन्य दोष भी जाते रहे। थोड़े भोजन पर भी उसका बल बढ़ता गया।

अन्त में उसे निराश देखकर मैं दङ्ग रह गया। हम सब कुहनी महाशय के कृतज्ञ रहेंगे।

लिपज़िग } गस्टव०-पी०

आमाशय और आँतों की पुरानी जलन, स्नायु की खराबी; स्मरण शक्ति में निर्बलता

प्यारे साहब,

मुझे कठिन रोग था। पिछले चार वर्षों में भोजन की खराबी से मेरे स्नायु को अति हानि-पहुँची थी। अपने दुःख से दुखी होकर मैंने कभी आत्मघात का भी विचार किया था परंतु अब मैं आनन्द से हूँ। मेरी स्मरण शक्ति ने अद्भुत उन्नति की है। आपकी चिकित्सा से मुझे बड़ा लाभ हुआ। अब मुझे शिर-पीड़ा नहीं होती।

मैं आप के चिकित्सालय की हर प्रकार की सफलता चाहता हूँ और आप को धन्यवाद देता हूँ।

संट (मोरोविया) } आप का दास
ह्यूगो, बी,
(आस्ट्रिया का पोस्ट मास्टर)

सर्वाङ्ग बलहीनता, भूख का न लगना

प्रियवर महाशय,

आपकी लिखी हुई सम्मतियो के लिए जिनसे मुझे रोग पर विजय पाने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है, धन्यवाद देता हूँ। आपके लिखने के अनुसार प्रारम्भ में मैने कुछ फ्रिक्शन हिप बाथ लिए जिनसे मेरे शरीर का आलस्य जाता रहा, कब्ज दूर हो गया और भूख लगने लगी। धीरे-धीरे आपकी चिकित्सा के सेवन से त्वचा का पीलापन गुलाबी होने लगा।

क्लीनफ़ाक } आपका सेवक
एफ० बी०

गठिया का दर्द

प्यारे महाशय !

मुझे यह लिखते हुए बड़ा आनन्द हो रहा है कि आप के स्टीम बाथ, और फ्रिक्शन हिप बाथ के सेवन से मेरा गठिया का रोग पूरी तौर से जाता रहा। केवल दो ही स्नानों में मैं अच्छी तरह चलने लगा था। मैं चाहता हूँ कि जो लोग गठिया से पीड़ित हैं उन्हें चाहिए कि आपकी चिकित्सा रीति से लाभ उठावें।

लिपजिग }

आप का दास।
जी० ई०

पेट की खराबी, प्रदर

प्रियवर महाशय जी,

मैं चाहती हूँ कि आपकी चिकित्सा के लिये मैं आपको धन्यवाद दूँ। अपने रोग के संबन्ध में मैंने वर्षों बड़े बड़े प्रसिद्ध डाक्टरों की सलाह ली परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। आप की सहायता से अब मैं बिल्कुल नीरोग हो गई हूँ। आपकी कृपा के लिए एक बार फिर मैं हृदय से आपको धन्यवाद देती हूँ।

लिपजिग }

आपकी दासी
मिसेज ई० एल०

पाचन-शक्ति की खराबी

प्रियवर महाशय,

मुझे यह सूचित करते हार्दिक आनन्द हो रहा है कि जिसका उपचार एलोपेथिक व होमियोपैथिक डाक्टरों से कदापि न हो सका उसे आप की चिकित्सा रीति ने शीघ्र अच्छा कर दिया। मेरी स्त्री की पाचन शक्ति खराब हो गई थी। मृत्यु उसके निकट थी परन्तु आपकी चिकित्सा ने उसे बचा लिया। अब वह स्वस्थ और बलवती है। अब उसका वज़न १०४ से १२६ पौंड हो गया है। धन्यवाद।

कार्थियन, लोअर
सुसेटिया }

आपका—
टी० डबल्यू०

मिर्गी

मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि मिस्टर कुहने ने मेरे एक शिष्य बालक को जिसका नाम गोले था और जो मिर्गी के रोग में गिरफ्तार हो गया था अपनी जल-चिकित्सा द्वारा शीघ्र ही आराम कर दिया।

गोले को मिर्गी के दौरे बार-बार हुआ करते थे और उसमें पागलपन के लक्षण दीख पड़ने लगे थे। जिस दिन मिस्टर कुहने ने उसकी चिकित्सा प्रारम्भ की उस दिन से उसे एक भी दौरा नहीं आया। अब उसका रङ्ग रूप निखर आया है।

मिस्टर कुहने लगातार चार महिने तक बालक की चिकित्सा करते रहे।। इस बीच में उन्होंने बालक से किसी भी प्रकार की फीस नहीं ली बल्कि उलटे ही बालक को रुपये पैसे की सहायता देते रहे।

जो मनुष्य अपनी हानि उठाकर रोगियों की चिकित्सा करें, वह निश्चय रोगियों का सच्चा हितैषी होगा।

लिपजिग } लेखक—
ई० एच०

अति शिर पीड़ा

प्रियवर मिस्टर कुहने,

मुझे लड़कपन से ही शिर का दर्द रहता था। आगे चलकर यह रोग ऐसा बढ़ा कि असाध्य प्रतीत होने लगा। एक बार तो मुझे लगातार १४ दिन तक सर दर्द बना रहा। ऐसा मालूम होता था कि मस्तिष्क जला जा रहा है। सिर पीड़ा का प्रभाव मेरी आँखों पर भी पड़ता था और वे बहुत कुछ खराब हो चली थीं। आपकी चिकित्सा रीति द्वारा ऐसा भयानक रोग भी शीघ्र ही आराम हो गया। अब मैं भली भाँति काम कर सकता हूँ और समझता हूँ कि मुझे पुनर्जीवन मिला है।

मैं आपका कृतज्ञ हूँ और धन्यवाद के साथ ही निवेदन करता हूँ कि अगर आप अपनी चिकित्सा सम्बन्धी छोटी-छोटी पुस्तकें छपवा कर जनता में बांटें तो उससे जनता का बहुत कुछ उपकार हो सकता है। आपकी सेवा के लिए मैं तैयार हूँ।

न्यू बिनजिन } आपका दास
जी० एं० एल

दमा, साँस, बवासीर, कंठ की जलन

प्रियवर मिस्टर कुहने,

आपने चिकित्सा सम्बन्धी पत्र द्वारा जो सलाह मुझे दी उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। आपके पत्रानुसार मेरी स्त्री छः महिने से प्रतिदिन फ्रिक्शन सिट्ज बाथ और कभी-कभी गर्म फ्रिक्शन हिप बाथ और स्टीम बाथ बारी-बारी से लेती रही है। वह सेव और बिना चाले हुए आटे की रोटी खाती है। वह खिड़कियाँ खोलकर सोती है और मैदान में अधिक देर तक रहती है। वह अब अच्छी हो रही है। अब उसकी बवासीर अच्छी हो गई है। नीरोगियों की भाँति उसे भूख लगती है और जो कुछ वह खाती है सब पच जाता है। मुझे आपकी चिकित्सा करने से पूर्ण शान्ति है।

मैंने एक तीन वर्ष के बालक को जिसके कंठ में जलन रहा करती थी फ्रिक्शन सिट्ज बाथ और स्टीम बाथ दे-दे कर अच्छा कर दिया।

हम्सडोर्फ आपका हितचिंतक
पी० ए०, अध्यापक

गठिया—फूले हुए पाँव

डियर मिस्टर कुहने,

मुझे चिरकाल से हाथ और पाँव की गठिया का रोग था। हाथों की हड्डियाँ इस प्रकार निकल आई थीं कि मेरे हाथ लुंजे

मालूम होते थे। मैं किसी वस्तु को भी पकड़ नहीं सकती थी। मेरे पैर इतने सूज गए थे कि मैं सीढ़ी पर नहीं चढ़ सकती थी। मुझे असह्य पीड़ा थी परन्तु आपकी चिकित्सा से मुझे शीघ्र आराम हुआ। आपके सादे सिट्ज़बाथ ने मुझे तीन ही मास मे भयानक रोग के फंदे से निकाल लिया। सचमुच आप कठिन से कठिन रोगी को बिना पैसे रुपये के अच्छा कर देते हैं। आपकी चिकित्सा सादी और जादू का सा असर करने वाली है। मैं अपने भयंकर रोग से छुटकारा पाने पर आपको धन्यवाद दिए बगैर नहीं रह सकती।

लिपजिग } आपकी दासी
मिसेज टी०

टाँगे छोटी हो जाने के कारण पूरा लँगड़ापन, कूल्हे का कठिन रोग, हर समय उदास रहने का पागलपन

अक्टोबर सन् १८८६ ई० में मेरी पुत्री एलसा को जिसकी आयु साढ़े चार वर्ष की थी कूल्हे का रोग हो गया। उसकी चिकित्सा ऐलोपैथिक रीति से हुई परंतु रोग सदैव के लिए दूर न हुआ। सन् १८६० में रोग वाला पैर दूसरे पैर की अपेक्षा छोटा हो गया। तब तीन सप्ताह तक पलास्टर पट्टी का सेवन हुआ। एक मास तक घटने बढ़ने वाले पलङ्ग का सेवन कराया गया परंतु वह अच्छी न हो सकी। अन्त में लिपजिग के चिकित्सालय में मैं उसे ले गई, परन्तु वहाँ भी वह अच्छी न हो सकी। अस्पताल की चिकित्सा से मेरी पुत्री उदास रहने लगी और मुझे उसके आरोग्य होने के संबंध में अनेक प्रकार की शंकाएँ होने लगीं।

अंत में मैने आपकी सम्मतियों पर पूरा अमल किया। केवल तीन ही फ्रिक्सन सिट्ज़बाथ लेने पर उसकी उदासी जाती रही और वह खड़ी होने लगी। धीरे धीरे अच्छी होने लगी और पन्द्रह दिन में उसकी ऐसी हालत हो गई कि वह सरलता

बिना किसी सहायता के जीने पर चढ़ने लगी। तीन मास के पश्चात् रोग के सम्पूर्ण चिन्ह जाते रहे। अब दोनों पैरों की लंबाई बराबर होगई है और वह भलीभाँति चलती फिरती है।

लिपज़िग } मिसेज़ मिना एच०

गठिया, कब्ज़, बवासीर, टाइफस, गर्भाशय का टल जाना, काली खाँसी, रक्त ज्वर

प्यारे कुहनी साहेब,

मैं पहिले अपना जीवन सुचारु रूप से व्यतीत नहीं करता था। इसका प्रभाव यह हुआ कि मुझे गठिया का रोग हो गया। मैं काम करने के अयोग्य हो गया और जीवन से तङ्ग रहने लगा। मैंने आपकी पुस्तक पढ़कर फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लिया, स्टीम बाथ लिया, अनुत्तेजक भोजन किया और खिड़कियाँ खोलकर सोया। अब पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न हूँ।

मेरी स्त्री गर्भाशय के टेढ़ेपन के कठिन रोग में ग्रस्त थी। जब उसने मुझे फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लेते देखा तो वह भी सरल जीवन व्यतीत करने लगी। शीघ्र ही उसे बहुत लाभ हुआ। रात्रि को उसे गहरी नींद आने लगी। वह बलवती हो गई। छः सप्ताह में उसके आमाशय की खराबी और बवासीर भी जाती रही। इस प्रकार उसे रोगों से छुटकारा मिला। फिर उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। बालक स्वस्थ और निरोग है।

दो वर्ष हुए मेरी स्त्री के टाइफाइड ज्वर ने पकड़ा परन्तु आपकी सम्मति से उसे शीघ्र आराम हो गया।

मेरा छठा बालक पौने पाँच वर्ष की उमर में रक्त ज्वर से ग्रस्त हो गया और उसी सिलसिले में उसे सन्निपात हो गया। परन्तु आपके बताये हुए स्नानों द्वारा एक महीने में सारी शिकायत दूर हो गई और बालक चङ्गा हो गया।

प्रत्येक रोग में आपकी चिकित्सा जादू का सा असर करती है। इसमें अशर्फियाँ भी खर्च नहीं होती। थोड़े से परिश्रम से ही सारा रोग उड़ जाता है। मैं आपको ऐसी चिकित्सा रीति के प्रचलित करने पर बधाई देता हूँ।

एलबर फील्ड } आपका शुभचिंतक—
बी० एच०

मूत्राशय में रेत का रोग

डियर मिस्टर कुह्ने,

मुझे दो दिन तक प्रातःकाल पेशाब करने में बड़ा कष्ट हुआ और बाएँ कूल्हें से ऊपर थोड़ी देर तक पीड़ा भी मालूम हुई। दोपहर में पेशाब करते समय एक पथरी का टुकड़ा निकला और इसके पश्चात् कई दिन तक पथरी रेत की भाँति गँदला पेशाब आता रहा। फिर एक छोटा सा पथरी टुकड़ा निकला परन्तु इस बार पीड़ा न हुई।

इससे मुझे बड़ी खुशी हुई। आपकी पुस्तक में मूत्राशय की पथरियों की बाबत घुल घुलकर निकलना लिखा है।

शीघ्र ही मैं चङ्गा होगया और अब स्वस्थ हूँ। ऐसी दशा को आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

ज़ेइस्टेड } आपका दास—
ए०

सर्वांग निर्बलता, नेत्र का रोग, आमाशय रोग

प्रियवर मिस्टर कुह्ने,

मेरी स्त्री १४ वर्षों से आमाशय, घबराहट और निर्बलता के रोग में ग्रस्त थी। अनेकों डाक्टरों की दवायें उसे दी गईं पर लाभ कुछ भी न हुआ। उसकी दशा बिगड़ती गई। वह निर्बल हो गई। उसकी आँख भी कमजोर हो गई। अब न तो वह पढ़ सकती थी और न घर का कुछ काम कर सकती थी।

अन्त में आप की बताई हुई रीति से उसकी चिकित्सा की गई। शीघ्र ही उसे आराम हुआ और ऊपर बताये हुए सारे रोग जाते रहे। मैं इस प्रकार के रोगियों से सिफारिश करता हूँ कि वे आपकी चिकित्सा रीति से लाभ उठावें।

लिपज़िग } आपका वफादार—
जी० एफ०

पाचन शक्ति के दोष, निद्रा का न आना

प्रियवर मिस्टर कुहने,

मुझे यह बताते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि आपकी चिकित्सा रीति के अनुसार फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ, हिपबाथ और स्टीम बाथ के सेवन से मेरा स्वास्थ्य सुधर गया और मेरी पाचन-शक्ति के सारे दोष नष्ट हो गये। अब मैं बलवती हो गई हूँ और प्रसन्न रहती हूँ। पहले की अपेक्षा भली भाँति सो लेती हूँ।

लिपजिग } आपकी दासी—
एमेली एफ०

कब्ज़, बवासीर, जिगर का बढ़ जाना

प्रिय मिस्टर कुहने,

मुझे यह सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि मेरा चालीस वर्षों का पुराना रोग आपकी चिकित्सा रीति से अच्छा हो गया। अब दो बार पाखाना होता है और साथ ही प्रतिदिन बवासीर का रोग भी कम होता जाता है।

मेरा जिगर जो बढ़ गया था अब ठीक हो गया है और उदर पीड़ा भी जाती रही है। मैंने आपकी सम्मति के अनुसार अनुत्तेजक भोजन का व्यवहार किया है और प्रतिदिन प्रातः काल एक फ्रिक्शन हिप बाथ लिया है। मैं अब नीरोग हूँ। मैं आपको बार-बार धन्यवाद देता हूँ।

एबलिंग } आपका दास—
एफ० सी० कसान

दाँत पीड़ा, शिर पीड़ा, घबराहट, नींद का न आना, आवाज का बैठ जाना

प्रियवर मिस्टर कुह्ने,

एक दिन शीत ऋतु में मुझे ऊपर के जबड़े को सबसे आखिरी खोखली दाढ़ के कारण जोर की दाँत पीड़ा हो गई। उसमें ऐसी जलन थी कि जबड़े का दाहिना भाग मस्तिष्क तक सूज आया। टीस के कारण नींद आती ही न थी। प्रतिदिन कई बार फ्रिक्शन सिट्ज बाथ लेने से कुछ कुछ शान्ति हुई। पर आपकी आज्ञानुसार जब मैंने एक स्टीम बाथ आध घंटे तक, फिर फ्रिक्शन सिट्ज बाथ लिया तो धीरे-धीरे पीड़ा कम हो गई। चन्द घंटो में ही मेरा रोग जाता रहा। इसके पश्चात् आपके स्नानो द्वारा मुझे शिर-पीड़ा और नेत्र-पीड़ा से भी छुटकारा मिला है।

इसी प्रकार एक बार मुझे सर्दी ने पकड़ लिया। मेरी आवाज ऐसी बैठ गई कि मैं बात भी नहीं कर सकता था परन्तु आपके फ्रिक्शन सिट्ज बाथ से आश्चर्य जनक लाभ हुआ और मैं शीघ्र ही भली भांति बोलने लगा।

मैं आपकी उस कृपा के लिये, जिसे आपने अपने अमूल्य चिकित्सा द्वारा मुझ पर की है, आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

लिपजिग }   आपका दास—
                                                        कार्ल. एल०

सुगमता से बच्चा जनना

प्यारे मिस्टर कुह्ने,

मैं आपकी उस अमूल्य राय के लिए धन्यवाद देता हूँ जिसे आपने मेरी स्त्री के बच्चा जनने के लिए दिया था। हमारे पहले लड़के का जन्म बड़ी कठिनता से हुआ था। उसमे डॉक्टर की जरूरत पड़ी थी, उस डाक्टर ने मेरी स्त्री के शरीर

की असाधारण बनावट को देखकर संतान न उत्पन्न करने की सलाह दी थी परन्तु आपकी सलाह का मैं कृतज्ञ हूँ जिसके कारण अन्त के दो प्रसव बिना दाई की सहायता के सरलता से हुए थे। पिछला बालक अन्य बालकों से भारी था।

डानकी }

आपका दास—
पाल के०

क्षयी रोग

प्रियवर,

जब दूसरे डाक्टरों ने मेरे बालक के रोग को असाध्य बता दिया तो भाग्यवश मैंने आपकी The new science of healing नामक पुस्तक खरीदी और उसी के अनुसार बालक की चिकित्सा करने लगी। शीघ्र ही बालक चंगा हो गया। हम सबों को आश्चर्य हुआ कि बालक कैसे इतनी जल्दी अच्छा हो गया। धन्यवाद।

लक्जिमबर्ग }

आपकी दासी—
मिसेज पी० आई०

जलने का घाव

प्रिय महाशय,

मेरे बड़े लड़के ने एक दिन खौलते हुए पानी में हाथ डाल दिया जिससे उसका हाथ जल गया और उसमें घाव हो गए। मैंने जले हुए घावों की चिकित्सा आपकी पुस्तक की बताई हुई रीति से की। फल आश्चर्यजनक हुआ। एक सप्ताह के भीतर जला हुआ प्रत्येक घाव अच्छा हो गया। यहाँ तक कि उसके दाग भी शेष न रहे। आपको धन्यवाद देते हुए मुझे आनन्द हो रहा है।

हैनबर्ग }

आपका सेवक—
हेनरिक बी०

कान का बहना, कर्ण पीड़ा, मौसमी ज्वर

प्रियवर महाशय जी,

मैं आनन्द से हूँ। मेरे कान का बहना, उसकी पीड़ा और मौसमी ज्वर आदि सभी अच्छे हो गए हैं। मैं अब भी प्रति-दिन एक फ्रिक्शन हिप बाथ नित्य सवेरे लेता हूँ ताकि भविष्य में फिर रोग न हो सके।

वेनिज़ुला, दक्षिणी अमेरिका } आपका दास—
कार्लोस एल० पी०

मिर्गी और हाथ पैरों का ऐंठना

डियर मिस्टर कुह्ने,

मेरा १० वर्ष का छोटा बालक आपकी सहायता से मिर्गी और हाथ पाँव के ऐंठन के रोगों से अच्छा हो गया। मैं इसके लिए आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। डाक्टरों के जवाब दे देने पर मैंने आपकी अमूल्य चिकित्सा का हाल सुना। अस्तु, आपकी सम्मति के अनुसार हमने उसे प्रतिदिन स्नान कराये और स्वाभाविक भोजन दिया। एक ही सप्ताह में मेरा बालक चंगा होकर स्कूल जाने लगा। मैं आपकी चिकित्सा रीति की प्रशंसा नहीं कर सकता। आपको फिर धन्यवाद देता हूँ।

स्रोन फील } आपका दास—
फैंज़-एनटनी० बी०

आमाशय की खराबी, छाती की कमजोरी, फेफड़े की जलन

१६ वर्ष तक मैं आमाशय की खराबी के रोग में जकड़ा रहा। बिना दवा के पाखाना न होता था। पिछले चार पाँच वर्षों तक तो यह दशा रही कि पेशाब भी ठीक न होता था। मेरी छाती कमजोर थी, फेफड़ों में जलन थी। मैंने जिनेवा नगर मे अनेकों डाक्टरों की सम्मति ली पर कुछ लाभ न हुआ। जब मैंने मिस्टर कुह्ने की सम्मति के अनुसार चिकित्सा

की तो मुझ पर जादू का असर हुआ । मैं शीघ्र अच्छा हो गया । अब मैं अपने काम भलीभांति कर लेता हूँ । होटल का प्रबन्ध और पत्र आदि स्वयं लिखता हूँ । मुझे मिस्टर कुहने की चिकित्सा रीति ने नवजीवन दान दिया है ।

श्वाजसी वाद
कैंटन फाइवर्ग (स्वीजर लैंड) } इ० डबल्यू० एस०

कान का बहना, शिर पीड़ा, कान और कंठ में खून जमना, कान की छोटी हड्डियों में मवाद निकलना

प्यारे मिस्टर कुहने,

गत सात वर्षों से मेरा पुत्र कान व कंठ के रोगों से ग्रसित था । पिछले कुछ दिनों से उसके कान से मवाद निकलने लगा और हर समय शिर में दर्द रहने लगा। मैंने उसे नाक, कान और कंठ के रोगों की चिकित्सा करने वाले डाक्टरों को दिखाया । पीछे से होमियोपैथिक डाक्टर से भी सलाह ली पर कुछ लाभ न हुआ । अन्त में अपने पुत्र को लेकर लिपजिग नगर पहुँचा और आपकी सम्मति लेकर दवा करने लगा । शीघ्र ही मेरा पुत्र अच्छा हो गया । मैं इसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप कृपा करके एक प्रति The new Science of healing की शीघ्र भेज देंगे ।

वाल मार्शिन } आपका दास—
ब्रूनो एस०

मूत्राशय की पथरी, सुगमता से बच्चा जनना फेफड़े का रोग

प्रिय मिस्टर कुहने,

मैं प्रसन्नता पूर्वक आपको सूचित करता हूँ कि अब मैं अच्छा हूँ । एक पिसनहारे का बालक मूत्राशय की पथरी के

रोग में फँस गया था। उसने आपकी बताई हुई रीति से व्यवहार किया जिससे वह शीघ्र ही चङ्गा हो गया। इसी प्रकार एक ३७ वर्ष की स्त्री को बच्चा जनने में बड़ा कष्ट हुआ था। वह अपने बालक को दूध न पिला सकती थी। उसने आपकी रीति पर अमल किया और शीघ्र अच्छी हो गई।

एक मनुष्य को फेफड़े का रोग है। वह आपकी चिकित्सा रीति का पालन कर रहा है और उसकी दशा दिन पर दिन सुधरती जाती है। आपकी चिकित्सा-रीति यहाँ बड़ी उन्नति कर रही है।

जर्मेनिया कोन्टा डे सेरा
ब्राज़ील

आपका—
एच० एस०

नेत्र रोग चेहरे फुंसियाँ कण्ठरोग शीतला, रक्तज्वर

प्यारे मिस्टर कुह्ने,

बचपन में मुझे नेत्र रोग था जो आगे चल कर अच्छा हो गया। लेकिन उस समय मेरे चेहरे की त्वचा में सदैव पीड़ा देने वाली एक प्रकार की फुंसियाँ बाकी रह गई थी। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष मुझे कंठ रोग, शीतला और रक्त ज्वर से ऐसी पीड़ा होती जाती थी जो असह्य होती थी। उस समय के रोगों पर ध्यान देने से मेरे रोंगटे खड़े हो जाते है। आपकी चिकित्सा रीति द्वारा मुझे जो लाभ हुआ वह शब्दों में बताया नहीं जा सकता। अब मैं पूर्ण रीति से स्वस्थ और सुखी हूँ। मैं हृदय से आपको धन्यवाद देती हूँ।

ओटिनजेन

आपकी दासी—
लीना एस०

बवासीर के मस्सों का रोग, नींद न आना, क्रोध का वेग

प्रियवर,

मैंने आपकी सम्मति पर पूर्ण रीति से ध्यान दिया। जैसी आपने सलाह दी वैसे ही मैंने स्नान और भोजन किये। मुझे अच्छा लाभ हुआ। तीन वर्ष के पश्चात् अब मैं हँसा तो मेरी स्त्री और मेरे बच्चे आश्चर्य करने लगे। मेरी अँतड़ियाँ अब ठीक तौर से काम करती हैं। बवासीर के मस्से अब दूर हो गए हैं। और अब मैं भली-भाँति सो लेता हूँ। पहले की भाँति अब मुझे शीघ्र ही क्रोध भी नहीं आ जाता। आज्ञा दीजिए कि मैं आपको धन्यवाद दूँ।

सेंटपीटर्स बर्ग (रूस) }

आपका सेवक—
एच० डबल्यू०

जलोदर, सिल, फ्लूरिसी

प्यारे मिस्टर कुहने,

आप सचमुच रोगियों के लिए मसीहा हैं। आप को धन्य-वाद देने के लिये मेरे पास शब्द ही नहीं हैं। मैं दो वर्ष से फ्लूरिसी जैसे भयानक रोग में फँसी थी। डाक्टरों ने मेरी दशा देखकर जवाब दे दिया था। केवल आपही के नुसखे से मैं अच्छी हुई। चिकित्सा प्रारम्भ करते ही मेरी तबीयत अच्छी होने लगी और पेडू के ऊपर की रसौली घुलने लगी। धीरे धीरे सारा रोग हवा हो गया और मैं पूरी तौर से स्वस्थ्य हो गई हूँ।

विनजीकोन (स्वीटजर लैंड) }

आपकी दासी—
मिस इडा एस०

गिल्टी का सूज आना, दाँत पीड़ा, नेत्र रोग गले की सूजन और जलन, फेफड़े की सूजन, दमा, स्वप्नदोष

प्रियवर मिस्टर कुहने,

चिरकाल से मैं दंतपीड़ा, दाँए और बाँए ओर की गिल्टियों

की सूजन, नेत्र की कमजोरी कंठ की जलन आदि रोगों के फंदे मे पड़ा था। आपकी सम्मतियों पर मैंने यथा शक्ति अमल किया और इसका फल अच्छा हुआ। मुझे फेफड़ो की जलन, दमा और स्वप्नदोष का भी रोग था। जो अब अच्छा हो गया है। मुझे पूरा विश्वास हो रहा है कि अगर मैं ठीक समय पर सँभल न गया होता तो अब तक मै कभी स्वर्ग पयान कर गया होता, परन्तु ईश्वर की कृपा से मै ठीक मार्ग पर आ गया। मै आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

एसकोन }

आपका वफादार
पादरी ई०

गुदा में नासूर, आँत का फोड़ा

प्रियवर,

आपके दूसरे पत्र के उत्तर मे, जिसमें कि आपने दशा पूछी है, मैं प्रसन्नता पूर्वक आपको सूचित करती हूँ कि दो सप्ताह हुए गुदा का नासूर और आँत का फोड़ा दोनों बिलकुल अच्छे हो गए हैं। आपकी सम्मति के अनुसार मैंने जनवरी मास के दूसरे सप्ताह मे प्रति दिन दो या तीन फ्रिक्शन सिट्ज बाथ लेने शुरू कर दिये। मै भोजन भी बराबर अनुत्तेजक करती रही। फल स्वरूप अब मै पूर्ण नीरोगी हूँ। आपकी चिकित्सा रीति का दिनो दिन प्रचार हो, यही मेरी अभिलाषा है।

होल्ट (डेनमार्क) }

जूलिया एल०

अत्यन्त घबड़ाहट, हस्तमैथुन

मेरे बालक को हस्तमैथुन और घबड़ाहट का रोग लग गया था। मैंने उसे लाख डराया, धमकाया पर कुछ लाभ न हुआ। जब मैंने उसे फ्रिक्शन सिट्ज बाथ और सात्विक भोजन दिया तो वह क्रमशः अच्छा हो गया। मै मिस्टर कुह्ने की चिकित्सा-

रीति की प्रशंसा करता हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

लिपजिग } एच० एस०

दर्द गठिया, हृदय के रोग, गर्भाशय में सर्तान, फोड़ा बवासीर के मस्से, पाचन शक्ति के दोष, कमर पीड़ा

प्यारे मिस्टर कुह्ने,

आपकी चिकित्सा रीति ने मरते हुए मनुष्यों को बचा लिया है। एक रोगी जो गठिया के रोग में ग्रस्त था नीरोग हो गया है। एक स्त्री ने जिसके गर्भाशय में सर्तान फोड़ा था, बिल्कुल अच्छी हो गई है। मैंने स्वयं एक वर्ष से अधिक आप की चिकित्सा रीति का पालन किया और मुझे बवासीर के मस्से, पाचन शक्ति की मंदता आदि रोग अब नही सताते। मै आपको दिल से धन्यवाद देता हूँ।

आपका दास
बिन्सेन्ट डी०
बुनोस एरिस } कुह्ने नेचर क्योर सभा का सभापति

नेत्र रोग

प्यारे मिस्टर कुह्ने,

मेरे १२ वर्ष के एक बालक को नेत्र रोग ने घेर लिया था। उस पर आपने जो अमूल्य सम्मति मुझे प्रदान की, उसके लिए मैं हृदय से आपको धन्यवाद देता हूँ। आपकी सम्मतियों पर ध्यान रखते हुए जो चिकित्सा की गई, उससे आश्चर्य-जनक लाभ हुआ। तीन ही सप्ताह के स्नान के पश्चात् बालक लगभग नीरोग हो गया। एक सप्ताह पश्चात् वह पूर्ण रीति से चंगा हो गया। आप मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार कीजिये।

रेमशिद हेस्टन } आपका दास—
जी० एफ०